विषय–सूची

प्रह्लाद

(त्रैमासिक पत्रिका)

वर्ष : १६८१ (अप्रैल से जून तक) अंक : २

वेदामृत

संसमिद्युवसे वृष्णनग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१॥

हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए धनवृष्टि को ॥

समानो मंत्रः समितिः समानी समानंमनः सहचित्तमेषाम् ।
समानं मंत्रभिमंत्रये वः समानेनवो हविषा जुहोमि ॥२॥

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूं बराबर भोग्य पा सब एक हों ॥

(ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त)

माननीय कुलपति महोदय द्वारा
दीक्षान्त समारोह के अवसर पर दिया गया

( )

भाषण

अर्चनीय संन्यासीगण, माननीय कुलाधिपति महोदय, आदरणीय न्यायमूर्ति श्री खन्ना जी, देवियों, सज्जनों, साथियो एवं ब्रह्मचारियो !

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के इस वार्षिकोत्सव पर सम्मान योग्य श्री एच० आर० खन्ना, अवकाश प्राप्त न्यायाधीश सर्वोच्च न्यायालय ने अपने व्यस्त कार्यक्रम के उपरान्त जिस श्रद्धा एव स्नेह से हमारे निमन्त्रण को स्वीकार किया है और यहा नव-स्नातकों को आशीर्वाद देने के लिए पधारे हैं उसके लिए मैं आपकी ओर से एव गुरुकुल परिवार की ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

न्यायमूर्ति एच० आर० खन्ना अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के स्वामी हैं। प्रारम्भ में आपने अमृतसर में वकालत शुरु की। १९५२ में आप जिला एवं सेशन जज नियुक्त हुये। १९६२ में आप पंजाब उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर आरूढ़ हुये। १९६९ में आप देहली उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश नियुक्त हुए। तत्पश्चात् १९७१ में आपने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश का पद ग्रहण किया। १९७७ में आपने इस पद को स्वेच्छया त्याग दिया। किन्तु भारत सरकार ने आपको कार्यमुक्त नहीं किया। अतः जुलाई १९७९ तक आप भारत के विधि आयोग के अध्यक्ष पद पर कार्य करते रहे। भारत के प्रधान मन्त्री ने आपको भारत सरकार से विधि एवं न्याय मन्त्री पद को स्वीकार करने लिए आमन्त्रित किया। इस पद को भी आपने थोड़े दिनों में त्याग दिया।

यह कहना अनावश्यक है कि "इदन्नमम" और "तेन त्यक्त न भुञ्जीथ" की आप प्रत्यक्ष मूर्ति है। जब कभी आत्मा की आवाज़ ने उन्हें बुलाया उन्होंने ऊंचे से

ऊंचे पद को ठुकरा देने में ज़रा भी हिचकिचाहट नहीं की। यहां तक कि भारत के उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के आसन को ग्रहण करने का अवसर भी आपने प्रसन्नता पूर्वक त्याग दिया। आप न केवल इदन्नमम के जीवन्त प्रतीक है अपितु आपने अपने जीवन में स्वामी दयानन्द के प्रिय श्लोक "निन्दन्तु नीति निपुणाः" को भी चरितार्थ किया है। आपने आपत्काल के दौराम हैबस कार्पस के चर्चित मुक़द्दमे में अन्य जजों के साथ असहमति प्रकट करते हुये व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा हेतु जो निर्भीक आदेश दिया उसका न्यायजगत में बहुत सम्मान हुआ। न्यूयार्क टाइम्स ने अपने सम्पादकीय में लिखा कि नवीन भारत के पहले १८ वर्षों में स्वतन्त्र और प्रजातन्त्र का बोलबाला रहा। यदि फिर कभी भारत उस गौरव को प्राप्त करता है तो निश्चय ही फारतीय उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री एच०आर० खन्ना स्मृति-मन्दिर के अधिकारी होंगे।

केशवानन्द भारती के केस में आप द्वारा लिखित इस आशय का निर्णय कि लोकसभा भारत के संविधान के मौलिक ढांचे को नहीं बदल सकती आज देश का सर्व मान्य क़ानून बन चुका है। निःसन्देह आप आप भारतीय जनता की स्वतन्त्रता के रक्षक रहे हैं।

दिसम्बर १६७८ में भारत के मुख्य न्यायाधीश ने सर्वोच्च न्यायालय में आपके चित्र का अनावरण किया। आज तक किसी भी जीवित न्यायाधीश को यह सम्मान प्राप्त नहीं हुआ।

प्रत्येक भारतीय को आपके वीर-धीर व्यक्तित्व पर गर्व है। ऐसे ही महान व्यक्तित्व के तप से आर्य धर्म की शाश्वत मर्यादाओं के पुनर्स्थापन का आन्दोलन सक्रिय हो रहा है। आप जैसे श्रेष्ठ, निर्भीक, धर्मात्मा व्यक्ति को आज अपने बीच मे पाकर हम समस्त कुलवासी गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं।

मान्य अतिथि,

यह तो आप जानते ही हैं कि आज से ८० वर्ष पूर्व स्वामी श्रद्धानन्द ने ब्रिटिश शिक्षा पद्धति के विरोध में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को पुनः स्थापित करने के लिये गुरुकुल की स्थापना की थी। स्वामी दयानन्द की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायियों ने उनकी यादगार क़ायम रखने के लिये लाहौर में दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल स्थापित किया जो बाद में कालेज के रूप में परिणित हो गया, परन्तु श्री गुरुदत्त विद्यार्थी एवं स्वामी श्रद्धानन्द ने अनुभव किया कि यह कालेज

भी स्वामी दयानन्द द्वारा निर्देशित कार्यक्रम को पूरी तरह नहीं निभा पा रहा है। अतः उन्होंने स्वामी दयानन्द के सपनों को साकार रूप देने के लिये गुरुकुल स्थापित करने की योजना बनाई।

गुरुदत्त विद्यार्थी की इहलीला १८८९ में समाप्त हो गई और वे भगवान को प्यारे हो गये। परन्तु स्वामी श्रद्धानन्द ने अभूतपूर्व आत्मविश्वास के साथ अपने अडिग संकल्प को पूरा किया। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति और शक्ति इसी स्वप्न को पूरा करने में लगा दी और अनेक दानवीरों और सहयोगियों को की सहायता के फलस्वरूप गुरुकुल की बुनियादें कायम करने मे सफल हुये।

स्वामी श्रद्धानन्द ने जिस प्रकार के गुरुकुल की स्थापना की इसके बारे में सर रेम्ज़ मैकडानल्ड ने जो १९१४ में गुरुकुल पधारे थे। और बाद में इंग्लैड के प्रधान मन्त्री बने-अपने संस्मरण में निम्नवत् लिखा है—

"जिस किसी व्यक्ति ने भारत के विद्रोह के बारे में पढ़ा लिखा है वह निश्चय ही गुरुकुल के नाम से सुपरिचित होगा। यहां आर्यो के बच्चों को शिक्षा दी जाती है।"

"मेरी ट्रेन प्रातः ही हरिद्वार पहुँची। यहां गंगा पर्वतों से उतर कर मैदानी इलाके में प्रवेश करती है। जब हम नदी किनारे पहुँचे तो हमें मिट्टी के तेल के कनस्तरों से बंधी दुई बांसों की एक किश्ती पर बिठा दिया गया और हमारी यह किश्ती शीघ्र ही मझधार में बहने लगी, अन्त में हम एक रेतीले किनारे पर जा उतरे। वहां से हम पैदल रवाना हुये। दूर हमें ध्वजा स्तम्भ दिखाई दिया जिस पर गुरुकुल की ध्वजा फहरा रही थी। गुरुकुल जाने का पथ पुष्प वाटिकाओं से घिरा हुआ था। गुलाब और चमेली की सुगन्ध सर्वत्र व्याप्त थी। इधर उधर खेल के मैदान थे। प्रवेश द्वार पर ओइम् का झण्डा फहरा रहा था। लगभग ३०० विद्यार्थी इस समय यहां पढ़ते हैं। महात्मा मुंशीराम उनके पिता हैं और वे उनके पुत्र हैं। वे ४ बजे प्रातः उठते हैं। शारीरिक व्यायाम करते हैं। ठंडे पानी से स्नान करते हैं, फिर सन्ध्या उपासना करते हैं। पीत वस्त्र धारण करते हैं, माता-पिता से मिलने का अवसर उन्हें केवल वार्षिकोत्सव पर प्राप्त होता है। छुट्टियों में बच्चों को यत्र तत्र ले जाया जाता है। महात्मा मुंशी राम कहते हैं कि बच्चों को तप और अनुशासन का अभ्यास कराने के लिये मैं प्रयत्नशील हूं।"

"मेरे कमरे में उन्होंने लाल फूलों के दो पुष्प गुच्छ सजा दिये हैं। खाना खाने के बाद हम स्कूल देखने गये। स्कूल में चारों ओर अनुशासन और प्रसन्नता

है। बच्चे बड़ी श्रद्धा से अपना पाठ पढ़ रहे हैं। कुछ बच्चे मिट्टी के माडल बना रहे हैं। जैसे ही कक्षायें समाप्त हुई बच्चे भागकर खेल के मैदान की ओर लपके।"

"शाम को हम जंगल में भ्रमणार्थ गये और जैसे ही रात हुई हम वापिस लौटे। शाम को मैंने उन्हें सामूहिक सन्ध्या हवन में और फिर ध्यान में उपस्थित देखा। तत्पश्चात रात्रि भोज हुआ और दिन का कार्यक्रम समाप्त हुआ।"

इस प्रकार का था महात्मा मुंशीराम का गुरुकुल। मैंने उपर्युक्त उद्धरण को दोहराने की इसलिये धृष्टता की है कि जब हम पुनः स्वामी श्रद्धानन्द के सपनों का गुरुकुल स्थापित करने के लिये कृत संकल्प हैं यह चित्र हमारे आदर्श को सुस्पष्ट करता है।

विगत कई वर्षों से गुरुकुल पर अनुशासनहीनता, अराजकता और त्रास के बादल छाये रहे हैं। वास्तव मे यहां एक प्रकार का देवासुर संग्राम ही होता रहा है। इस स्थिति में गुरुकुलवासियो पर विभिन्न दिशाओं से तरह-तरह के भीषण प्रहार हुए। उन्होंने जिस धैर्य और आत्मविश्वास के साथ अनेक कष्ट सहते हुये असुरों का मुकाबला किया वह प्रशंसनीय है। अन्त में सत्य को विजय हुई और असुर पराजित हुये। आज गुरुकुलबासी स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा दर्शाये गये पथ पर अग्रसर हैं, भलेही उनके चरणों में वैसी गति और स्फूर्ति न आ सको हो जिसकी अपेक्षा आप महानुभाव करते रहे हैं।

महोदय,

जिन सज्जनों ने जुलाई १९८० में गुरुकुल की दशा देखी है वे जानते है कि उस समय परिसर में कितनी झाड़ झंखार थी। सफ़ाई का नामों निशान नही था। इसके अतिरिक्त साल भर से स्टाफ़ को वेतन नही मिल पा रहा था। १९७९-८० की परीक्षायें सम्भावित थी। अध्यापक-वर्ग एवं शिक्षकेतर वर्ग के कई स्थान रिक्त पड़े थे जिसके कारण कार्य-संचालन में बाधाये आ रही थी।

गुरुकुल परिसर को साफ़ करने के लिये यह निर्णय लिया गया कि महीने के अन्तिम शनिवार को श्रमदान के तौर पर सामूहिक सफ़ाई दिवस मनाया जाय। इस का सर्वत्र बड़े उत्साह से स्वागत हुआ। नवम्बर के प्रथम सप्ताह में आयुर्वेद कालेज गुरुकुल कांगड़ी के प्रधानाचार्य डा० सुरेशचन्द्र शास्त्री और राजस्थान के भूतपूर्व स्वास्थ्य और चिकित्सा-निदेशक डा० सत्यदेव आर्य के नेतृत्व में धन्वन्तरि सप्ताह मनाया गया। आज आप सब देख रहे हैं कि गुरुकुल

परिसर चमकता और खिलता हुआ नज़र आ रहा है। यह इसी श्रम-तप का फल है।

इसी प्रकार स्टाफ़ को यथासमय वेतन प्रदान करने की स्थिति में यथेष्ट सुधार आया है। इसके लिए मै पूर्व वित्त अधिकारी श्री सरदारी लाल वर्मा और वर्तमान वित्ताधिकारी श्री बी०एम० थापर का आभारी हूं। विश्वविद्यालय अनु-दान आयोग से अब नियमित रूप से अनुदान प्राप्त होने लगा है। परीक्षाये भी सम्पन्न हो चुकी हैं जिनका अन्तिम चरण आज उपाधि-प्रदान द्वारा सम्पादित हो रहा है। कतिपय रिक्त स्थानों पर अध्यापकगण की नियुक्ति हो चुकी है। अन्य स्थानों की पूर्ति के लिये हम विधिवत प्रयत्नशोल हैं। विश्वविद्यालय और विद्या-लय के पठन-पाठन और क्रीड़ा-कौशल में स्थैर्य अनुभव किया जा रहा है।

अभी हाल ही में गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय को एसोशियेशन आफ़ इण्डियन यूनिवर्सिटोज़ की सदस्यता प्राप्त हुई है जिसके लिये मैं डा० अमरीक सिंह सचिव, एसोशियेशन आफ़ इण्डियन यूनिवर्सिटीज का आभारी हूँ। आज हमारी खेल कूद को टीमें अन्तर विश्व विद्यालय प्रतियोगिताओं में भाग लेने लग गई हैं।

गत मास विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने कुमायूं की पहाड़ियां, कार्बेट नेशनल पार्क एवं दिल्ली उत्तर प्रदेश और राजस्थान के ऐतिहासिक नगरों की सरस्वती-यात्रायें कीं। उन्हें आदेश थे कि जहां जहां जाये नियमपूर्वकहवन यज्ञ करें एवं आर्य साहित्य का वितरण करें। इस प्रकार उन्होने न केवल स्वयं यात्रा का लाभ उठाया अपितु आर्य समाज के सन्देश का भो प्रचार-प्रसार किया। प्रचार और प्रसार के लक्ष्य को ही दृष्टि में रखकर डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ओर डा० हरगोपालसिंह के सम्पादकत्व में अंग्रेजी में त्रैमासिक पत्रिका "वैदिक पाथ" के नियमित प्रकाशन का कार्य पुनरारम्भ किया गया है। इसके अतिरिक्त डा० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी के निर्देशन में विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा त्रैमासिक 'प्रह्लाद' एव डा० विष्णुदत्त राकेश के निर्देशन में विद्यालय के ब्रह्मचारियो द्वारा त्रैमासिक 'ध्रुव' पत्रिका का प्रकाशन कार्य आरम्भ किया गया है, जिससे कि प्रचार के कार्य के साथ-साथ गुरुकुल के विद्यार्थी पत्रकारिता के क्षेत्र में समुचित अनुभव प्राप्त कर सकें।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि गुरुकुल के वेद-विभाग के अध्यक्ष डा० रामप्रसाद बिगत कई वर्षों से सर्व साधारण में आर्य साहित्य के प्रचार हेतु लघु पुस्तिकाओं की रचना कर रहे हैं। अब तक इन्होंने १६ ऐसी पुस्तकों का निर्माण किया है जिनकी ७५,००० प्रतियां जिज्ञासुओं में वितरित की जा चुकी हैं। इन

पुस्तिकाओं में चुने हुये वेद मन्त्रों की व्याख्या दी जाती है जिससे कि उनके अर्थ सुबोध होकर सर्व साधारण को हृदयंगम हो सकें। इनका मूल्य केवल पढ़ना-पढ़ाना सुनना सुनाना है।

मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता हो रही है कि उनकी इस साधना और उपलब्धि को देखते हुये संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर ने उनको एक हजार रु० का प्रथम आचार्य गोवर्धन शास्त्री पुरुस्कार ११ अप्रैल को हुये वेद–सम्मेलन में प्रदान किया।

यहां मैं प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी की स्वतः स्वीकृत कर्तव्य परायणता का भी उल्लेख करना चाहूँगा, सत्यार्थ-प्रकाश के दूसरे समुल्लास को शतपथ ब्राह्मण के 'मातृमान् हितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद' से आरम्भ करते हुये ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि वास्तव में जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान होता है।

आगे चलकर वे लिखते हैं कि मिथ्या बातों से बचने का उपदेश बाल्यावस्था में ही सन्तानों के हृदय में डाल दें जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पडके दुःख न पावे और वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख प्राप्ति भी जना देनी चाहिये क्योंकि शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है।

इसी समुल्लास में आगे चलकर स्वामी जी ने लिखा है कि जैसे अन्य शिक्षा की वैसे ही चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों को छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा भी बालकों को देनी चाहिये। माता, पिता तथा आचार्य अपनी सन्तानों एवं शिष्यों को सदा सत्य बोलने के उपदेश करें और यह भी कहें कि जो जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उनका ग्रहण करो ओर जो जो दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो। जो जो सत्य जानें उनका प्रचार और प्रकाश करें। किसी पाखण्डी दुष्टाचारी पर विश्वास न करें। और जिस जिस उत्तम कर्म के लिये माता पिता और आचार्य आज्ञा देवें उनका यथेष्ट पालन करो।

इसी लक्ष्य को सम्मुख रखकर गुरुकुल में ७ वी, ८वीं, ९वीं एवं १०वीं, के ३१ ब्रह्मचारियों को प्रतिदिन एक-एक मन्त्र अथवा संस्कृत सुभाषित कंठस्थ करवाने का संकल्प प्रो० चन्द्र शेखर त्रिवेदी, प्रवक्ता, मनोविज्ञान–विभाग ने लिया

और जब १०२ मन्त्र श्लोक कंठस्थ हो गये तो इन्हें संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर द्वारा प्रदत्त आर्थिक सहायता से 'जीवन-ज्योति' नामक लघु पुस्तिका के आकार में प्रकाशित करवाया गया इसका विमोचन ऋषि बोधोत्सव के अवसर पर कांगड़ी ग्राम मे आयोजित बृहत् सभा में किया गया।

यहां यह उल्लेखनीय है कि यह कार्यक्रम बीच में ही टूट जाता यदि इसमें वयोवृद्ध अधिष्ठाता पं० चन्द्रकेतु एवं स्वयं ब्रह्मचारीगण अटूट दिलचस्पी न दिखाते। मुझे यह पूर्ण आशा है कि गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय का यह अग्रिम दस्ता जहां कहीं जायेगा ऋषि दयानन्द की सत्य और न्याय की पाखण्ड-खण्डनी पताका को प्रतिष्ठित करेगा एवं सर्वत्र निर्भय होकर इदन्नमम की भावना से धर्माचरण करते हुए जीवन-यात्रा में अग्रसर होगा।

आर्य भाइयो और बहनो,

यहां मै आर्य स्वाध्याय केन्द्र का भी जिक्र करना चाहूंगा। आप जानते ही है श्री रामगोपाल शालवाले के नेतृत्व में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाज के गत सौ वर्ष का बृहत् इतिहास तैयार करने की योजना बनाई है। इस कार्य की पूर्ति हेतु हमारे विद्वान् इतिहासवेत्ता डा० सत्यकेतु की अध्यक्षता में एक कार्य-संचालन-समिति का गठन किया गया है। डा० सत्यकेतु ने नेहरू नेशनल म्यूजियम की तरह का गुरुकुल में एक आर्य संग्रहालय बनाने का प्रस्ताव गुरुकुल के कुलाधिपति के समक्ष रखा, जिसे सहर्ष स्वीकार करते हुए गुरुकुल में विद्यमान संग्रहालय का एक भाग उनके सुपुर्द करने का निश्चय किया गया है। यहीं पर वह आर्य स्वाध्याय केन्द्र का मुख्य कार्यालय एवं बृहत् पुस्तकालय भी स्थापित करेंगे, जहां आर्य विद्वानों द्वारा रचित ग्रन्थों के अतिरिक्त अत्यन्त मूल्यवान पाण्डु-लिपियों का एवं ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह एवं प्रदर्शन किया जायेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि डा० सत्यकेतु का यह संकल्प शीघ्र ही सिद्ध होगा। इस कार्य में गुरुकुल के इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० विनोद चन्द्र सिन्हा उनके साथ सहयोग कर रहे हैं।

देवियो और सज्जनों,

इस अवसर पर आर्य भट्ट विज्ञान मेले का उल्लेख न करूं तो प्रतिवेदन में एक बड़ी भारी कमी रह जायेगी। आप जानते हैं कि १६ अप्रैल १६७५ को भारतीय वैज्ञानिकों ने सोवियत रूस की सहायता से आर्य भट्ट उपग्रह को कक्षा में स्थापित करके बड़ी भारी वैज्ञानिक उपलब्धि प्राप्त की। तदुपरान्त भास्कर



दिनांक १३.४.८१ को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में पधारे मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति श्री हंसराज जी खन्ना माननीय कुलाधिपति, श्री वीरेन्द्र जी एवं सम्माननीय कुलपति श्री बलभद्र कुमार जी हूजा जी के साथ। पीछे श्री जितेन्द्र जी (सहायक मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगडी) भी हैं

और रोहिणी की उपलब्धियों ने हमारे वैज्ञानिकों की कीर्ति में चार चांद लगाये। भारत का नाम ऊंचा हुआ। आप सब यह भी जानते हैं कि पुरातन काल में वैज्ञानिक जगत् में भारत का कितना ऊंचा स्थान था, किन्तु कालगति से भारत अज्ञान और अन्धविश्वास के कूप में जा गिरा। ऋषि दयानन्द की कृपा हुई कि हम अपनी सनातन संस्कृति से सुपरिचित हुए और अब पुनः आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक उन्नति की ओर अग्रसर हैं। हालांकि वेद श्रेयस और प्रेयस दोनों की उपलब्धि की प्रेरणा देते हैं, परन्तु कई क्षेत्रों में यह धारणा अब भी बनी हुई है कि आर्य समाज का काम केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित है। सच तो यह है कि भारत के अथवा प्राणी मात्र क उद्धार के लिये आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों के सुमधुर समन्वय की आवश्यकता है। इसी दृष्टि में स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने गुरुकुल के पाठ्यक्रम में जहां आध्यात्मिक शिक्षा पर बल दिया है वहां वैज्ञानिक शिक्षा की उपेक्षा नहीं की। मेरे पूज्य पिताजी आचार्य श्री गोवर्धन ने जो १६०८—१० तक में यहां मुख्याध्यापक थे, उन्हीं दिनों हिन्दी में भौतिकी और रसायन की दो पुस्तकों की रचना की जो कई वर्षों तक यहां की पाठ-विधि में प्रचलित रही। हिन्दी-जगत् में भारत की वैज्ञानिक उपलब्धियों का प्रचार हो और हमारे ब्रह्मचारी उनसे सत् प्रेरणा प्राप्त करे इस आशय से गुरुकुल कांगड़ी के विज्ञान–महाविद्यालय के डा० विजयशंकर के सम्पादकत्व में जब यहां से एक त्रैमासिक पत्रिका "आर्यभट्ट" नाम से निकाली जाने लगी है। इसी शृंखला में इसी वर्ष यहां आर्यभट्ट मेले का भी आयोजन किया गया है। इसका विधिवत् उद्घाटन रुड़की विश्वविद्यालय के कुलपति जगदीश नारायण द्वारा ११ अप्रैल को सम्पन्न हुआ। इसमें हमें भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स रानीपुर, रुड़की विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय छात्र सेना इत्यादि से अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ। हम उनके आभारी हैं।

आर्य बहनों और भाइयो;

अब मुझे आपको एक दो और शुभ संवाद देने हैं। आप जानते ही हैं कि वर्षों पहिले दानवीर अमृतराय की श्रद्धा गुरुकुल परिसर में अमृत वाटिका के रूप में प्रकट हुई थी और मध्य में एक भव्य यज्ञशाला उजड़ी पड़ी रही। गत वर्ष इसमें पुनः प्राण प्रतिष्ठा हुई जब गुरुकुल आर्य समाज के नव निर्वाचित तरुण अधिकारियों ने यहां साप्ताहिक सत्संग करने का निर्णय लिया। जिस कर्तव्य परायणता से डा० जयदेव यहां साप्ताहिक हवन यज्ञ कराते हैं वह श्लाघनीय है। इसकी शोभा बढ़ाते हैं गुरुकुल विद्यालय के ब्रह्मचारीगण और उनके धर्मपरायण अधिष्ठाता सर्व श्री ईश्वर सिंह, चन्द्रकेतु, हुकम सिंह और हरिबन्धु।

इसी समाज मन्दिर में गत सितम्बर में २१ ता० को एक अभूतपूर्व कार्यक्रम सम्पन्न हुआ जब इस इलाके के नामी डाकू भीष्म पाण्डेय ने यज्ञाग्नि के समक्ष उपस्थित होकर यज्ञोपवीत ग्रहण किया और वेदानुकूल जीवन व्यतीत करने का व्रत लिया। डा० जयदेव ने उसको नारायण नाम से सुशोभित किया और श्री जितेन्द्र ने उसको श्री नारायण स्वामी की कर्तव्य दर्पण पुस्तक मार्ग दर्शन के रूप में भेंट की। इसके बाद भीष्म नारायण कैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं इसकी मुझे जानकारी नहीं लेकिन सुनता हूं उन पर विभिन्न दबाव हैं जैसे कि हरेक व्यक्ति पर होते हैं।

हम जानते हैं कि हमारा मन एक प्रकार का कुरुक्षेत्र है जहां जहां सात्विक और तामसिक शक्तियों का निरन्तर युद्ध चलता रहा। तभी तो श्री आनन्द स्वामी कहा करते थे कि गायत्री हम आर्यजनों की मां है। हमें चाहिये कि हम सदा उसका जाप करें एवं उसकी गोद ही में विचरें, विश्राम करें। मेरी परम पिता से यही प्रार्थना है कि वह भीष्म नारायण और उसके साथियों को सुपथ पर चलने की शक्ति प्रदान करे। वह किसी धूर्त के चंगुल में फंसकर पथ भ्रष्ट न हों।

मैंने ऊपर ज़िक्र किया था कि हम स्वामी श्रद्धानन्द जी के चरण चिन्हों पर चलने का प्रयास कर रहे हैं लेकिन लड़खड़ाते क़दमों से मैंने ये शब्द पूरी ज़िम्मेदारी से इस्तेमाल किये हैं। उस लड़खड़ाहट का नमूना है कि अभी गुरुकुल परिवार के बहुत से सदस्य दैनिक अग्निहोत्र में तो छोड़ो आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में उपस्थित होना कर्तव्य नहीं समझते। वह परम सौभाग्य का दिन होगा जब आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में गुरुकुलवासियों की यथेष्ट उपस्थिति होगी।

आर्य समाज के उन नियमों में प्रावधान है कि सदस्य अपनी आय का शतांश चन्दे के रूप में दें। गुरुकुल कांगड़ी आर्य समाज के समक्ष इस नियम को पूर्णतया पालना करने का प्रस्ताव है। यदि ऐसा हो जाता है तो इस समाज की आर्थिक स्थिति बहुत सुदृढ़ हो जायेगी। यह टेप, पुस्तक समाचार बुलेटिन इत्यादि के प्रसार के कार्यक्रम हाथ में लेकर सक्रिय हो सकती हैं। स्थायी रूप से पुरोहित इत्यादि की नियुक्ति की जा सकती है। वास्तव में गुरुकुल आर्य समाज का यह परम कर्तव्य है कि यह न केवल हरिद्वार और भारत के किन्तु समस्त संसार के अन्धकार आच्छादित स्थलों को ज्योतिमय करने हेतु प्रकाश स्तम्भ की भूमिका निभायें।

सहयोगियो;

ऊपर मैंने रैम्जे मैकडानल्ड की गुरुकुल यात्रा का जिक्र किया था। आपने सुना स्वामी श्रद्धानन्द ने उन्हें कहा था कि वह बच्चों को तप और अनुशासन का अभ्यास कराने में प्रयत्नशील हैं। आइये हम अपने आपसे पूछें कि हम स्वयं कहां तक ऐसी जीवन साधना कर रहे हैं। जैसे मैने कई बार कहा है बच्चे तो वानर समान नकलची होते हैं। जैसा बड़ों को करते देखते हैं वैसा करते हैं। आइये, हम अन्तर्मुख होकर सोचें कि हम उनके सामने क्या आदर्श और उदाहरण उपस्थित कर रहे हैं ? हम स्वयं कहां तक यम नियम का पालन कर रहे हैं ? आज देश में विलासिता की बीमारी घर कर रही है। उससे जुड़ी हुई हैं आलस्य, प्रमाद और अनुशासन हीनता की घातक बीमारियां। ऋषि दयानन्द ने नव मानव के निर्माण का जो नुस्खा हमको आज से सौ वर्ष पूर्व दिया था यदि हमने उस पर पूर्णतया अमल किया होता तो आज हमारी स्थिति कहीं अत्यधिक उत्तम होती। उनके नुस्खे के मूल मन्त्र हैं ब्रह्मचर्य, तप और संयम।

निस्सन्देह कठोर तप से ही नव-मानव का निर्माण होगा और इस कार्यक्रम में अगवाई करना आर्य संस्थाओं का काम है लेकिन क्या मैं यह पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ कि हमारी आर्य संस्थाओं में कार्यरत कितने गुरुजन ब्रह्मचर्य के तप की आवश्यकवा अथवा साधना से भिज्ञ हैं ? कभी उनसे पूछिये तो सही कि ब्रह्मचर्य सूक्त कौन से वेद का सूक्त है ? उसका आशय क्या है ? स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने उसकी क्या व्याख्या की है।

यह है काम और चुनौती जो आज हमारे वेदज्ञ और संस्कृत विद्वानों के सामने है। उनका धर्म है कि वह आदर्शों का न केवल स्वयं पालन करें वरन् उनको जन साधारण तक पहुंचायें। सर्वप्रथम कम से कम अपनी ही शिक्षा संस्थाओं में कार्यरत सहयोगियों को तो इनसे परिचित करायें इस हेतु यदा कदा संगोष्ठियां करें। शिविर लगायें। स्पष्ट है कि इन आदर्शों का सर्वत्र प्रचार करने हेतु हमें हिन्दी और संस्कृत के दायरे से भी बाहर निकलना होगा और न केवल अन्य देशी और विदेशी भाषाओं के माध्यम को अपनाना होगा किन्तु दूरदर्शन और दूर सञ्चार से आधुनिक साधनों को भी प्रयोग में लाना होगा। तभी तो हम विश्व को आर्या बना सकते हैं। लेकिन विश्व को आर्या बनाने का बीड़ा तो वही उठा सकता है जो स्वयं असली मायनों में आर्या हो न कि नाम निहाद आर्या समाजी।

आर्य देवियो और सज्जनो,

इस प्रसंग में हमारे कुलसचिव डा० चन्द्रभानु अकिंचन ने एक कार्य-क्रम शुरु किया था, जो चल नहीं पाया। उसकी ओर भी आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा। दोष उनका नहीं है, दोष है मेरे जैसे अनुशासनहीन विद्यार्थियों का। डा० अकिंचन ने घोषणा की कि वे सप्ताह में तीन दिन अमृत वाटिका में सरल संस्कृत सुबोध हेतु वयस्कों की कक्षायें आरम्भ करेंगे। जोश में आकर मैंने अपना नाम तो उनकी श्रेणी में लिखवा दिया, परन्तु नियमित रूप से उपस्थित न हो पाया। ऐसा ही अन्य विद्यार्थियों द्वारा हुआ। डा. अकिंचन की कक्षायें टूट गयीं। जैसा मैंने ऊपर कहा है अब वह स्टेज आ गई है जब गुरुकुल के अध्यापकों, विशेषकर अंग्रेजी जानने वाले अध्यापकों को संस्कृत और वेद में प्रवेश प्राप्त करने हेतु उद्यमशील होना चाहिये। आप जानते ही हैं कि विश्वभर में आज वैदिक साहित्य के प्रति जिज्ञासा उभर रही है, संसार के प्रबुद्ध व्यक्ति योग की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। लेकिन उन तक वैदिक साहित्य पहुंचाने वाले हैं कौन यही स्वयं घोषित भगवान् ? यह तो अपनी खुदाई के नशे में मखमूर हैं। यह असली वैदिक संस्कृति का क्या संदेश देंगे ? अतः आज आर्य अध्यापकों के सामने यह चुनौती है। वह द्विभाषी, त्रिभाषी बनें। पहल गुरुकुल से हो सकती है। यहां संस्कृत और अंग्रेजी भाषा के विद्वान् एक ही परिसर में रहते हैं। वह आचार्य रामदेव, पं० लेखराम से प्रेरणा ग्रहण करें। और उनके सदृश एक दूसरे से अन्य भाषायें सीखकर देश विदेश में वेद प्रचार के कार्य में समर्पण भाव से जावें।

इसी प्रकार इनका यह भी धर्म है कि वह गुरुकुल में प्रविष्ट ब्रह्मचारियों को संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं में सम्भाषण शक्ति को उजागर करें। पुराने समय में गुरुकुल की यह एक विशिष्टता थी। उसे पुनः प्राप्त करना हमारा परम धर्म है।

मित्रो !

मैं कहां तक गुरुकुल की उपलब्धियों, विफलताओं अथवा सपनों का बखान करूं ? पंजाबी थियेटर के संस्थापक श्री गुरदयाल सिंह खोसला ने शेरे पंजाब लाला लाजपतराय पर पंजाबी में एक पचांकी नाटक लिखा। उसका हिन्दी अनुवाद गुरुकुल विद्यालय के अध्यापकों ने किया है, जो शृङ्खलाबद्ध रूप से आर्य मर्यादा में प्रकाशित हो रहा है। सर्व श्री जितेन्द्र और दीनानाथ के नेतृत्व में वार्षिक परीक्षाओं के पश्चात् गुरुकुल विद्यालय के ब्रह्मचारी इस नाटक को खेलने जा रहे हैं। इसी प्रकार हम सचेष्ट हैं कि वेद महाविद्यालय का संस्कृत विभाग

अपने विद्यार्थियों द्वारा कोई न कोई संस्कृत नाटक तैयार करावें। हम यह भी चाहते हैं कि विद्यालय में संगीत की भी कक्षाएं जारी हों जिससे कि ब्रह्मचारी वेद मन्त्रों, श्लोकों इत्यादि के सस्वर पाठ करने मे कौशल्य प्राप्त कर सकें और हम उन्हें टी०वी० रेडियो इत्यादि के माध्यम से दूरदराज तक प्रसारित करें।

हम यह भी चाहेंगे कि गुरुकुल विद्यालय के ब्रह्मचारियों को किसी न किसी हस्त कलाकौशल में पर्याप्त दक्षता प्राप्त करने का अवसर मिले ताकि यहां से उत्तीर्ण होने के पश्चात् वह सरकारी नौकरियों की तलाश में इधर-उधर न भटकें। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में वेद, वेदाँग, गणित, भूगोल, विज्ञान, ज्योतिष इत्यादि की शिक्षा के अतिरिक्त गुरुकुल की पाठविधि में आयुर्वेद, गान्धर्व-वेद, धनुर्वेद, अथर्ववेद के प्रशिक्षण का भी प्रस्ताव किया है। आज जब बैंकों इत्यादि से कर्जे आसानी से मिल सकते हैं कोई वजह नहीं हमारे ब्रह्मचारी नौकरी कीं खातिर दर-दर भटकें। इस कार्य-क्रम को ठोस स्वरूप देने हेतु हमने खादी ग्रामोद्योग से सम्पर्क स्थापित किया है। आशा है कि आगामी वर्ष में इस दिशा में हमें सफलता प्राप्त होगी और विद्यालय में शिल्पकला के प्रशिक्षण का सुचारु प्रबन्ध हो जायगा।

अब मैं युवक साथियों को सम्बोधित करना चाहूँगा।

आर्य युवको,

आप सब जानते हैं १९८२ में नई दिल्ली में एशियाई खेलें होने जा रही हैं और इनके बाद १९८४ में लास एंजिल्स् में ओलम्पिक खेलें होंगी। मैं जानना चाहूंगा आप उनमें विजयश्री प्राप्त करने के लिए क्या तैयारी कर रहे हैं? जैसा मैंने अनेक बार कहा है, ओलम्पिक के खेलों में लगभग ५०० पदक वितरित होते हैं। भारत के हिस्से में कितने आते हैं? जनसंख्या के अनुपात में हम भारतवासी विश्व का एक सातवाँ भाग हैं! हमें ५०० में से ७० पदक जीतने चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं कर पाते तो क्यों? क्या कभी आपने इस पर विचार किया है?

जैसे डा० सुरेशचन्द्र शास्त्री कहा करते हैं कि पुस्तक परीक्षा में तो लब्धांक, कृपांक, भिक्षांक अथवा छुरांक प्राप्त करके प्रथम श्रेणी उपलब्ध की जा सकती है, परन्तु क्रीड़ा के क्षेत्र मे ऐसा नहीं हो पायेगा। यहां तो निरन्तर साधना, अटूट तप, और अखण्ड ब्रह्मचर्य की आवश्यकता होगी। क्या आप यह कीमत देने को तैयार हैं? आइये, आज ध्यानचन्द का स्मरण करें, जिसने भारत की हाकी की टीम का कुशल नेतृत्व करके ५० वर्ष पहले विश्व खेल कूद जगत में भारत मां का

मुख उज्ज्वल किया था। आइये, उसके पदचिन्हों पर चलते हुए एशियाई और ओलम्पिक खेलों में भारत के गौरव के लिये एवं अपने और अपने माता-पिता के सम्मान के लिये स्वर्ण पदकों की मालाएं अर्जित करने का संकल्प लें। हां, इस यज्ञ में जहां आपकी साधना और तप की आहुतियां पड़ेंगीं वहां हम बड़ों को धन और सुव्यवस्था की सामग्री जुटानी होगी। गुरुकुल का वर्तमान प्रशासन इस दशा में अपनी जिम्मेदारी के प्रति पूर्ण सजग है। कि यह स्वप्न लेते हैं कि आगामी एशियाई खेलों में गुरुकुल के स्नातक अथवा ब्रह्मचारी अपना कला-कौशल दिखाकर कुलमाता का नाम उज्वल करेंगे। इस हेतु हमने गुरुकुल में शारीरिक शिक्षा के निदेशक का पद सर्जन करने का निश्चय किया है। यहां के विद्यार्थियों का डील-डोल बहुत सुन्दर है, उनमें अदम्य उत्साह है, पौरुष है। कमी है केवल पथ प्रदर्शन की और वैज्ञानिक तौर पर प्रशिक्षण की। इसे हम दूर करने जा रहे हैं।

इस अवसर पर मैं देहरादून कन्या गुरुकुल विद्यालंकार की छात्रा कु० इन्दिरा नेगी को उसकी उपलब्धि पर साधुवाद कहना चाहूँगा। इसने अखिल भारतीय प्रतियोगिता में नवीन मापदण्ड स्थापित किया और अब अन्तराष्ट्रीय कबड्डी प्रतियोगिता के लिये चुनी गई है।

साथियो,

आज देश और समाज में सर्वत्र विघटनकारी शक्तियों का प्रादुर्भाव हो रहा है। एक राष्ट्र, एक विधान, एक निशान की भावना धूमिल हो रही है। भारत में चिराग लेकर भी ढूंढ़िये तो भारतीय या हिन्दुस्तानी जन मुश्किल से मिलेगा। यहां कोई पंजाबी है तो कोई बंगाली, कोई असमिया है तो कोई मारवाड़ी; कोई मराठी है तो कोई गुजराती, कोई ब्राह्मण है तो कोई वैश या वैष्णव, कोई सिख या जाट है तो कोई हरिजन या अहिर, शिया या सुन्नी। लेकिन हिन्दुस्तानी आज कहां है ? आज देश में प्रान्तीयता और उप जातिवाद की बीमारी घुन की तरह लगी हुई है ऋषि दयानन्द ने हमें राष्ट्र प्रेम का मंत्र दिया था। दयानन्द के सैनिक आर्य जन ही इस बीमारी का दृढ़ता से मुकाबला कर सकते हैं।

जिला जज सहारनपुर के निर्णय दिनांक २ जुलाई के बाद जब मैं सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री राम गोपाल शालवाले से मिला, तो उन्होंने मुझे माल्यार्पण करते हुये "संगच्छध्वम्" का मंत्र दिया था। मेरा दृढ़ मत है कि इस संकट की घड़ी में जब हम अपने आपको आन्तरिक ओर बाहरी आसुरी शक्तियों से घिरा हुआ पाते हैं हम सबका हित इसी मंत्र को स्वीकार करने में है।

ब्रह्मचारियों में राष्ट्र प्रेम और एकता की भावना जाग्रत करने हेतु हमने १५ अगस्त को स्वतन्त्रा दिवस के अवसर पर विद्यालय के ब्रह्मचारियों को निम्नवत ४ सदनों में विभक्त किया और उन्हें झण्डे प्रदान किये।

१—वीर हकीकत सदन, २—शहीद चन्द्रशेखर आजाद सदन,
३—शहीद भगत सिंह सदन, ४—शहीद रामप्रसाद बिस्मिल सदन,

इसी प्रसंग में हमने यह भी निश्चय किया है कि हम वीरों, शहीदों की पुण्य तिथियाँ और विभिन्न आर्य पर्व ययेष्ठ श्रद्धा और उल्लास से मनाया करेंगे।

इसी श्रृंखला में ५ सितम्बर को शिक्षक दिवस मनाया गया, इसी प्रकार बाल दिवस महिला दिवस, रामदेव दिवस, शहीद लेखराम दिवस, गुरुकुल स्थापना दिवस, आर्य समाज स्थापना दिवस, श्रद्धानन्द सप्ताह और ऋषि निर्वाण उत्सव इत्यादि भी सोत्साह मनाये गये।

परम्परानुसार इस वर्षीय बसन्त पंचमी के अवसर पर पुण्य-भूमि में सोल्लास सहभोज एवं खेलकूद के कार्यक्रम सम्पन्न हुये।

ऋषिबोधोत्सव भी पूण्य भूमि मेंमनाया गया। ४ मार्च को कांगड़ी ग्राम में यज्ञ हवन किया गया। इस अवसर पर कांगड़ी ग्राम के श्री अर्जुन सिंह नामक १०२ वर्षीय वृद्ध सज्जन ने जो कि स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ काम करते थे अपने संस्मरण सुनाते हुए कहा कि स्वामी जी को पेड़ों से अत्यन्त प्रेम था लेकिन अब ये निर्दयता पूर्वक काटे जा रहे हैं। इस पर विज्ञान महाविद्यालय के वनस्पति विभाग के अध्यक्ष डा० विजय शंकर ने संकल्प किया कि आगामी वर्षा ऋतु में वे इस ग्राम में ७५० पेड़ लगायेंगे। ७५० इसलिये कि कांगड़ी ग्राम की जनसंख्या ७५० है। इसी प्रकार गांव की सफाई, चिकित्सा व्यवस्था, कन्या विद्यालय आदि के प्रबन्ध के लिये जिलाधीश बिजनौर से सम्पर्क स्थापित किया गया जिन्होंने कि इन कार्यों के लिये अपने सम्बन्धित अधिकारियों को आदेश दे दिये हैं। मैं जिलाधीश बिजनौर के प्रति इस सहयोग के लिये अपना आभार प्रकट करना चाहूंगा।

भाषण श्रृङ्खला में स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी एवं उनके आदर्शों पर प्रकाश डाला गया। इस अवसर पर उपस्थित सभी युवकों, विद्यार्थियों ने प्रतिज्ञा की कि वे वह स्वामी दयानन्द द्वारा दर्शाये निर्देशों के अनुसार २५ वर्ष की आयु से पूर्व विवाह नहीं करेंगे।

तत्पश्चात् यह कार्यक्रम गुरुकुल कांगड़ी के पुरातन महाविद्यालय के भवन में साधना शिविर के रुप में परिवर्तित होकर दिनांक ६-३-८१ तक चला।

वहाँ जमीन में गड़ा हुआ एक हवन कुण्ड प्राप्त हुआ जहां अनुमानतः स्वामी श्रद्धानन्द यज्ञ किया करते थे। ५ एवं ६ मार्च को सभी शिविरवासियों ने वहां यज्ञ किया। रात्री को कांगड़ी ग्रामवासी डेढ़ बजे तक भजन, प्रवचन एवं स्वामी श्रद्धानन्द के संस्मरण सुनाया करते थे।

इस साधना शिविर में आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली के प्रधान श्री सरदारी लाल वर्मा ने भी दो दिन बिताये। आयुर्वेद कालेज गुरुकुल कांगड़ो के प्रिन्सिपल डा० सुरेशचन्द्र शास्त्री भी वहाँ पधारे और उन्होंने सफाई और स्वास्थ्य की दृष्टि से कांगड़ी ग्राम की ओर विशेष ध्यान देने का आश्वासन दिया।

मुझे इस शिविर में ऐसा आभास हुआ कि मानो हमारे पूर्वजों की आत्मा हमें ललकार कर यह चुनौती एवं पुण्य सन्देश दे रही है कि यज्ञ की ज्वाला की भांति—

१—सर्वत्र प्रकाश फैलाओ-अन्धकार मिटाओ।
२—सर्वत्र सुगन्धि फैलाओ-दुर्गन्ध मिटाओ।
३—अपनी दुर्वासनाओं को दग्ध करो।
४—सर्वदा ऊर्ध्वगामी बनो।

मैं समझता हूं यदि हम ऋषि दयानन्द द्वारा दिये गये इस सत्य मार्ग के पथिक बनने का प्रयास करें तो इसमें न केवल हमारा कल्याण है वरन् स्वदेश और संसार का भी कल्याण है।

मान्य अतिथि,

मैं शायद जरूरत से ज्यादा बाते कह गया। मेरे दिल में आग है। मैं उसे प्रकाशित होने से रोक न पाया, क्षमा प्रार्थी हूं।

इससे पहले कि मैं आपसे नव स्नातकों को आशीर्वाद देने के लिये निवेदन करूं मैं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्री वीरेन्द्र के प्रति अपनी और अपने सहयोगियों की कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूं जो इतने व्यस्त कार्य-क्रम के बावजूद यदा-कदा हमें सम्भालने के लिये समय निकालते रहते हैं। साथ ही मै स्थानीय अधिकारियों, जिलाधोश, पुलिसअधीक्षक, स्थानीय न्यायाधीश एवं थानाधिकारियों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करना चाहूंगा जिनको हम समय असमय परेशान करते रहते हैं।

उपस्थित देवियो एवं सज्जनो,

मैं आप सबका आभारी हूं जिन्होंने हमें अपना अमूल्य समय प्रदान करके यहां पधारने का कष्ट उठाया। मेरे सहयोगियों ने आपकी यात्रा सुखद बनाने के प्रयत्न में अपनी ओर से कोई कसर बाकी नहीं रखी। फिर भी यदि आपके स्वागत सत्कार में कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिये क्षमा करेंगे।

मैं अपने साथियों के प्रति भी कृतज्ञ हूं जो सत्रारम्भ से ही गुरुकुल की छवि सुधारने में तत्पर हैं। उन्हें देर-सवेर अपने सत्कर्मों का फल अवश्य मिलेगा। प्रभु आश्रित होने के नाते उन्हें आश्वस्त करने में मुझे रत्ती भर भी संकोच नहीं है।

मान्य अतिथि,

आपका अधिक समय न लेता हुआ अब मैं आपसे निवेदन करूंगा कि उपस्थित नव स्नातकों को आशीर्वाद प्रदान कीजिये।

बलभद्र
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

-★★★-

(पाठक यह अनुभव करेंगे कि माननीय कुलपति "श्रीमान् बलभद्र कुमार जी हूजा" महोदय ने विश्वविद्यालय की वर्तमान स्थिति पर सरल एवं सुबोध शैली में प्रकाश डाला है। उनके विचार स्पष्ट हैं तथा उनका मार्गदर्शन अत्यन्त मूल्यवान है।)

—सम्पादक

हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद

ले० छात्र सुरेश चन्द्र एम०ए० (हिन्दी)
द्वितीय वर्ष

मानव-जीवन की किसी भी समस्या अथवा स्थिति की अभिव्यक्ति जब उसके वास्तविक रुप में की जाती है, तब वह उसका यथार्थ अथवा नग्न चित्रण कहलाता है। साहित्य का मानव-जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है, इसलिए साहित्य में भी इस प्रकार की अभिव्यक्ति होती आयी है। साहित्य का जो पक्ष वस्तु स्थिति अथवा रूप का नग्न अथवा यथार्थ चित्रण करता है, वह उसका यथार्थवादी पक्ष है। साहित्य का दूसरा पक्ष जीवन अथवा समाज के यथाथ रूप की ओर कभी प्रत्यक्ष और कभी परोक्ष ढ़ग से संकेत मात्र करके उस रूप के प्रतिकूल एक ऐसा आदर्श चित्र प्रस्तुत करता है जिसे देखकर यथार्थ के प्रति तिरस्कार, घृणा अथवा त्याग की प्रेरणा मिलती है। यह साहित्य का आदर्शवादी पक्ष है। अन्य भाषाओ के साहित्य के समान हमें हिन्दी-साहित्य में भी अभिव्यक्ति के ये दोनों रूप मिलते है। साहित्यकार यथार्थ रूप चित्रण के साथ मानव के रागात्मक सम्बन्ध की व्यंजना भी करता है। इस व्यंजमा के दो रूप हैं सामाजिक और आर्थिक। पहले को सामाजिक यथार्थवाद और दूसरे रूप को आर्थिक यथार्थवाद कह सकते हैं।

सामाजिक यथार्थवाद

प्रत्येक समाज के संगठन और संचालन के लिए कुछ निश्चित नियमों की आवश्यकता होती है। ये नियम उस समय की स्थिति, विश्वास और धारणा पर आधारित होते है, जिस काल में उस समाज का संगठन होता है। ये नियम त्रिकाल-बाधित नहीं होते। कुछ नियम सदैव ही समाज के लिए कल्याणकारी होते हैं, पर कुछ नियमों में समयानुसार परिवर्तन भी आवश्यक होता है। परिवर्तन के अभाव में ऐसे नियम समाज के लिए अहितकर सिद्ध होने लगते है और कलाकार अथवा साहित्यकार उन नियमों के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न सामाजिक स्थिति का यथार्थ चित्रण करना आवश्यक समझता है। हिन्दी का विभिन्न कालीन साहित्य उस काल की स्थिति, मनोदशा और जीवन का यथार्थ चित्रण करता है। हमें आदिकाल के चारण-साहित्य में, भक्तिकाल के कबीर, सूर और

तुलसी के साहित्य में तथा रीतिकाल के शृंगार-प्रिय कवियों के काव्य में तत्कालीन समाज का यथार्थ रूप स्पष्ट दिखाई देता है। समाज का इस प्रकार का वास्तविक चित्रण ही सामाजिक यथार्थवाद है। महाकवि कालिदास के "कुमार सम्भव" में उपस्थित शिव पार्वती के प्रथम समागम का वर्णन भी पूर्ण यथार्थवादी है। इसके अतिरिक्त "गाथा-सप्तशती", "अमरुक-शतक", "शृंगार-शतक" आदि ग्रन्थ यथार्थवादी हैं।

आर्थिक यथार्थवाद

हम वैदिक काल में ही वस्तु-विनिमय पर आधारित अर्थ-व्यवस्था देख रहे हैं यद्यपि उस काल में अर्थ का आज की तरह अधिक महत्व न था। इसका कारण संतुलित अर्थ-व्यवस्था का न होना है। दूसरे उस काल में आज की तरह समाज का एक बड़ा अंग अर्थ-पीड़ित न था, जिससे आर्थिक वर्ग-विभाजन का प्रश्न ही कभी उपस्थित नहीं हुआ।

किसी भी वस्तु के महत्त्व का अनुभव हमें उस वस्तु की न्यूनता अथवा अभाव की स्थिति में ही होता है। अर्थ का महत्त्व केवल उसकी उपयोगिता में है, वह हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति का एक महान् साधन है। जब हम अर्थाभाव से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते, तब हमें उसकी महत्ता का विशेष अनुभव होता है। अंग्रेजों के शासन के साथ भारत में अर्थ-संघर्ष आरम्भ हुआ। अंग्रेज एक साथ ही शासक और व्यापारी दोनों थे। अतः उनकी नीति के कारण समाज में आर्थिक विषमता का जन्म स्वाभाविक था। इस स्थिति ने अर्थ पर आधारित वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया।

यूरोप में अर्थ की समस्या पर आधारित वर्ग-संघर्ष बहुत पहले से चल रहा था। वहां की व्यापारिक क्रान्ति इसी संघर्ष को लेकर हुई थी। उस काल के अंग्रेजी साहित्य में हमें निर्धन वर्ग के इसी जीवन का यथार्थवादी चित्रण मिलता है।

वैदिक काल से आज तक जो यथार्थवादी साहित्य उपलब्ध है वह दो प्रकार का है। एक साहित्य वह है जिसमें उस काल की सामाजिक स्थिति का यथावत् वर्णन मिलता है। दूसरे प्रकार का वह साहित्य है, जिसमें किसी काल विशेष के व्यक्ति, उसके कार्य और उन कार्यों का परिणाम वर्णित हैं। वैदिक साहित्य में वैदिक काल का सामाजिक चित्र मिलता है। वह पहले प्रकार का यथार्थवादी साहित्य है। "महाभारत" में युधिष्ठिर, दुर्योधन, नल आदि राजाओं के साथ उनके कार्यों का विवरण तथा उसके परिणाम मिलते है। रामचरित-मानस में भी रावण द्वारा किये गये नारी-हरण और उसके परिणाम स्वरूप उसके सपरिवार विनाश का वर्णन मिलता है। यह दूसरे प्रकार का यथार्थवादी

साहित्य है। इससे स्पष्ट है कि यथार्थवाद आज का नया शब्द भले ही हो, पर "यथार्थवादी साहित्य" नवीन नहीं है।

बाबू गुलाबराय के कथनानुसार–"यथार्थ वह है जो नित्य प्रति हमारे सामने घटता है। उसमें पाप-पुण्य, सुख–दुःख की धूप–छांव का मिश्रण रहता है। यह सामान्य भाव-भूमि के समतल रहकर वास्तविकता से सीमाबद्ध रहता है। स्वर्ग के स्वर्णिम सपने उसके लिए परी देश की वस्तुएं हैं जो उसकी पहुँच के बाहर हैं।" इससे स्पष्ट है कि यथार्थवादी साहित्य में वस्तु के दोनों पक्षों का समावेश आवश्यक है। एक दूसरा दल समाज के घृणित, असुन्दर, हीन और असत् स्वरुप को ही यथार्थवादी साहित्य के अंतर्गत स्थान देना आवश्यक मानता है। यदि हीन पक्ष का चित्रण ही उसका लक्ष्य है तो उसका दृष्टिकोण एकांगी और उसका साहित्य अर्थ–यथार्थवादी ही समझा जावेगा।

हिन्दी साहित्य में यथार्थवाद

हिन्दी साहित्य में आरम्भ से ही यथार्थवादी प्रवृत्तियों को स्थान मिलता रहा है। आदिकालोन कवि अमीर खुसरो, नरपति नाल्ह आदि की रचनाओं में भी हमें यथार्थवादी दृष्टिकोण मिलता है। अमीर खुसरों ने निम्न पक्तियों में वियोगिनी नायिका का यथार्थवादी चित्रण इस प्रकार किया है—

सखी ! पिया को जो मैं न देखूं ;
तो कैसे काटूं अंधेरी रतियां।

प्रायः देखा गया है कि यथार्थवादी दृष्टिकोण में आरम्भ से ही आदर्शवादिता का अभाव रहा है। कवियों ने जहां नायक नायिका के उद्दाम प्रेमका चित्रण किया है, वहां उन्होने लोक–मर्यादा तक का ध्यान नहीं रखा। उनका यह प्रेम-निरूपण वासना-परक ही रहा है। इसमें नीति और मर्यादा का कोई स्थान नहीं है। कवि विद्यापति ने भी कहा है—

मनमधि मदन महोदधि उछलल
बूडल कुल मरजादे ।

विद्यापति जी स्वीकार करते हैं कि प्रेम की उन्मुक्त और उद्दाम स्थिति प्रेमी और प्रेमिका को विवेकहीन बना देती है, इस स्थिति का अन्त विनाश और पश्चात्ताप में ही होता है।

नरपति नाल्ह का स्थान आदिकाल के चारण कवियों में महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने "बीसलदेव रासो" में अपने काल की सामन्तशाही का यथार्थ चित्रण किया

उन्होंने उस काल के नारी-जीवन का जो चित्रण किया है वह भयावह है। उस काल की नारी अपने स्वामी की पत्नी नहीं दासी है। स्वामी के संकेतों पर नृत्य करने में ही उसके जीवन की सार्थकता है। महाराज बीसलदेव को उनकी गर्वपूर्ण उक्ति का उत्तर देने मात्र से उनकी रानी को बारह वर्ष के लिए वियोग की ज्वाला में जलने को विवश होना पड़ता है। रानी राजमती के मुख से कहलायी गयी कवि की निम्नांकित पंक्तियां उस काल के शोचनीय भारी जीवन का यथार्थ चित्र उपस्थित करती हैं—

त्रिय जनम कांई दियो महेस।
अवर जनम थोरे घणां हो नरेश॥

यद्यपि मध्य कालीन भक्त कवि आदर्शवाद के पोषक थे, तथापि उनके काव्य में यत्र-तत्र यथार्थ के दर्शन हो ही जाते हैं। इस दृष्टि से सूरदास का काव्य विशेष रूप से उल्लेख्य है। बाल-सुलभ चेष्टाओं का जितना यथार्थ अंकन इस प्रज्ञाचक्षु महाकवि ने किया है, वह हिन्दीं साहित्य में अन्यत्र अप्राप्त है। भ्रमरगीत में यथार्थ का मार्मिक चित्रण प्राप्त होता है—

उधो! मन नाहीं दस बीस!

मध्यकालीन या रीतिकालीन श्रृङ्गारी कवियों में तो यथार्थवाद और भी स्पष्टता से दीख पड़ता है। वस्तुतः समस्त रीतिकालीन काव्य सामाजिक अ.दर्शों से विमुख है। इन श्रृङ्गारी कवियों में बिहारी की दृष्टि अधिक यशार्थवादी परिलक्षित होती है। उन्होंने उद्दाम श्रृंगारिकता को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य कहा है और प्रिय के सानिध्य के सामने स्वर्ण को भी तुच्छ और मुक्ति को भी हेय समझा है—

चमक दमक हांसी ससक, कसक, झपट, लपटानि।
ये जिहि रति सो रति मुकति और मुकति अति हानि॥

इसके अतिरिक्त बिहारी ने तत्कालीन समाज, कथावाचकों, वैद्यों और ज्योतिषियों आदि की दुर्बलताओं का यथार्थ चित्रण किया है। उनकी "सतसई" तत्कालीन समाज की वास्तविक स्थिति का यथार्थ दर्शन कराने वाली कृति है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का दृष्टिकोण आदर्शवादी अधिक था फिर भी उन्होंने और उनके समकालीन कवि लेखकों ने तत्कालीन भारत की दुर्दशा, सामाजिक, आर्थिक और शासकीय दुराचरंण आदि की व्यंग्यात्मक शैली में यथार्थ अभिव्यक्ति की है।

द्विवेदी युग में आदर्शवादिता दृष्टिगोचर होती है, किन्तु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के विशाल व्यक्तित्व की सतर्कता के बावजूद यथार्थवादी दृष्टिकोण एकदम विलुप्त नही है। गुप्त जी की "भारत भारती" इस कथन का सर्वश्रेष्ठ और अकाट्य प्रमाण है। छायावादी कवि भी यथार्थवाद मे पीछे नही रहे। कुछ आलोचको ने आधुनिक हिन्दी काव्य मे यथार्थवाद का आरम्भ उन्ही से माना है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की तो आधार-भूमि ही यथार्थ है।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् यथार्थवाद को पूरा—पूरा समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी प्रवृतियो का सक्षप्त अध्ययन किया जाय। यथार्थ जीवन की वास्तविकता को व्यक्त करना है। यथार्थवादी कलाकार न अतीत का गुणगान करता है और न भविष्य के सुनहरे स्वप्न ही दिखाता है, यह उसका काम नही है और न उसके क्षेत्राधिकार की ही बात है। यह कर्तव्य तो आदर्शवादियों का है। वह तो केवल यथार्थ का पुजारी होता है और समस्या प्रस्तुत करता है उसका समाधान नही। इसका परिणाम यह होता है कि यथार्थवादी रचना में वैयक्तिकता के अधिक और सामाजिकता के नही के बराबर दर्शन होते हैं।

यथार्थवादी प्रवृत्तियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यथार्थवाद जहा जीवन की वास्तविकता को चित्रित कर हमे अपनी वस्तुस्थिति से परिचित कराता है, वही वह यथार्थवाद के नाम पर जीवन के हेय और अश्लील पक्ष की ही अभिव्यक्ति कर जीवन के प्रति अस्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान करता है। जहा वह सामाजिक व्यवस्था के प्रति शक्तिशाली प्रतिक्रिया को मुखर करता है, वहा जीवन की यथार्थता को भयावह रूप मे उभार कर हमे जीवन के प्रति पलायनवादी नही, तो कम से कम निराशावादी तो अवश्य ही बना देता है। मानव के उत्थान के प्रति विश्वास मिटता जाता है, क्योकि वह भविष्य की सुखद कल्पना करना तो जानता ही नही है और न चाहता है।

अन्त मे यह कहना अनुचित न होगा कि यद्यपि हिन्दी-साहित्य अपने बाल्यकाल मे ही विशिष्ट मान्यताओ को लेकर चला है और उसकी दृष्टि आदर्शवादी ही रही है, तथापि यथार्थवाद के आधुनिक काल की देन होते हुए भी, यह स्वीकार करना ही होगा कि हिन्दी-कविता के प्रत्येक युग मे इस प्रवृत्ति के दर्शन होते ही रहते है कभी प्रकट रूप म और कभी प्रच्छन्न रूप मे। इसके साथ यह भी उतनी ही सत्य है कि यथार्थवाद की सबसे सशक्त अभिव्यक्ति इसी युग मे हुई है।

असन्तोष एवं आन्दोलन क्यों ?

ले०-प्रमोद कुमार चौहान,

छात्र एम०ए० (हिन्दी) प्रथम वर्ष

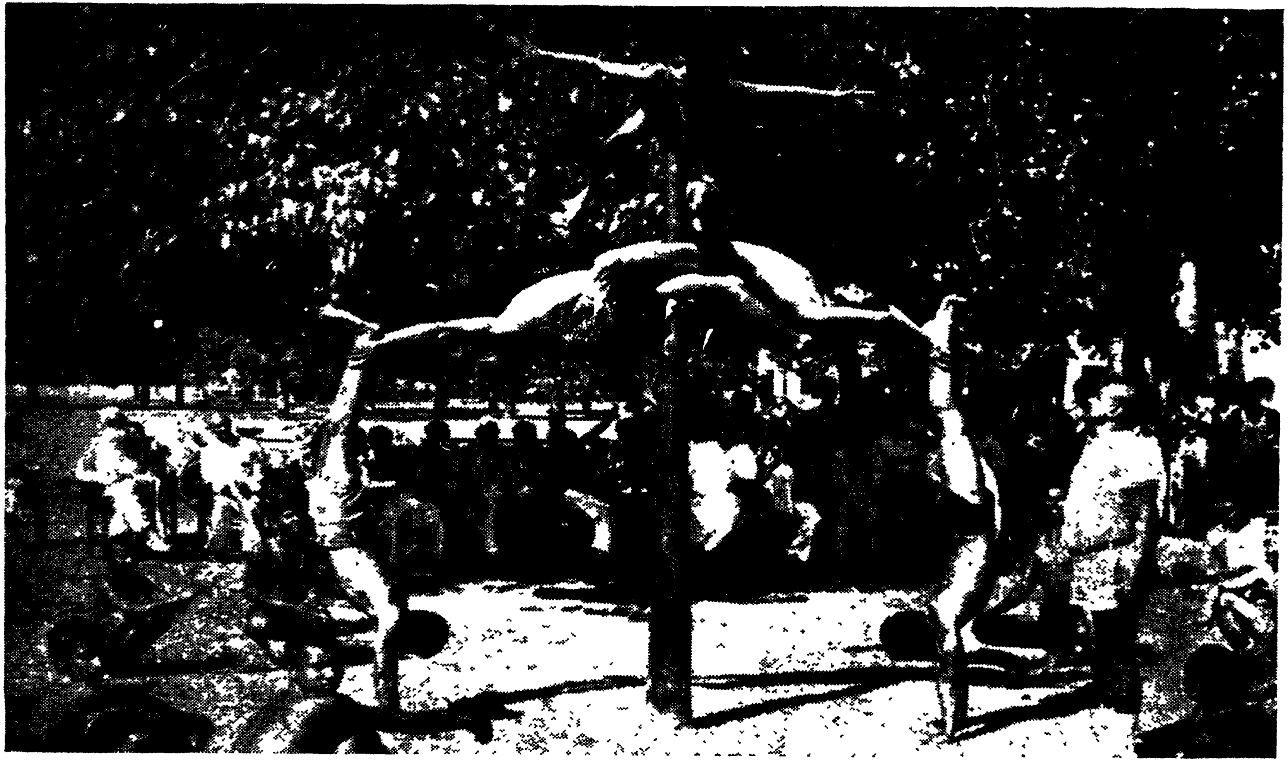
आज भारत में चारों ओर असन्तोष की ज्वाला धधक रही है। आज देश का प्रत्येक वर्ग आन्दोलन की राह पर अग्रसर है। सरकार के हर प्रयास के बावजूद देश मे शान्ति स्थापित नही हो सकी है। यदि हम भारत के मानचित्र पर एक दृष्टिपात करते हैं तो देखते है कि जम्मू काश्मीर का छात्र-आन्दोलन, हिमाचल का पुलिस एवं सरकारी कर्मचारी आन्दोलन, पंजाब का किसान-छात्र आन्दोलन, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात एवं कई प्रान्तों में फैला किसान आन्दोलन एवं प्रसिद्ध नागपुर का डांडी मार्च, बंगलौर में एच०ए०एल०, बी०ई०एल०, आई०टी०आई० आदि के श्रमिकों का आन्दोलन एवं गोली चार्ज, असम का प्रसिद्ध छात्र-आन्दोलन, बिहार में वन्दियों की आंखें फोडे जाने के विरुद्ध आन्दोलन, बंगाल का प्रसिद्ध नक्सलवादी आन्दोलन आदि भारत का एक सच्चा चित्र खीचते है। अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर यह अशान्ति की ज्वाला क्यों धधक रही है ?

वैसे तो अलग-अलग प्रदेशों की एवं अलग-अलग आन्दोलनों की भिन्न-भिन्न मांगें एवं आवश्यकताएं हो सकती हैं किन्तु इन सब आन्दोलनों के मूल में एक ही बात है और वह है मानसिक कुण्ठा से व्याप्त असन्तोष। अब आइए, राष्ट्र की प्रगति में बाधक इस अशान्ति पर विचार करें कि यह आखिर यह क्यों पनप रही है ? मेरी दृष्टि में असन्तोष के मुख्य रूप से तीन कारण है—

१—नागरिक शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान गोल्ड का कथन है कि देश में विद्रोह का कारण संविधान का पुरानापन होता है; क्योंकि संविधान ज्यो का त्यों रहता है और देश के नागरिकों का मानसिक स्तर उठ जाने कारण उसकी आवश्यकताएं आकांक्षाएं एवं सोचने के ढंग बदल जाते है। अतः सविधान में समय के अनुसार परिवर्तन की भारी आवश्यकताएं होती हैं किन्तु हमारे संविधान में पिछले ३१ वर्षो से कोई भी मूल परिवर्तन नही किया गया है जिसके कारण जनता दमन की शिकार हो रही है एवं असन्तोष बढ़ता जा रहा है।

२-दूसरा कारण है देश की सत्ता पर पूंजीवादियों का अधिकार। आज देश की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से पूंजीवादियों से पूरी तरह प्रभावित है। आज देश की भोली-भाली जनता (किसानों, मजदूरों) का खून चूसने वाले धनवान एवं बेईमान लोग पनप रहे हैं जिन्हें इस बात का भय है कि यदि मेहनतकस जनता एक हो गयी तो तुम्हारा प्रभुत्व समाप्त हो जायगा। ये लोग क्रान्ति से बहुत घबराते हैं। अतः क्रान्ति को टालने के लिए मेहनतकस जनता में धर्म, जाति, व वर्ग भेद के आधार पर फूट डालकर उन पर हमेशा के लिए हुकूमत करना चाहते हैं जिससे दोहरा असन्तोष फैलता है। एक तो मेहनतकस जनता में। व्याप्त ग़रीबी के कारण और दूसरा उनके द्वारा डाली गयी फूट के कारण उत्तर प्रदेश के साम्प्रदायिक दंगे तथा अनेक स्थानों पर कराये गये उत्पात इसका जीता जागता उदाहरण है।

३-स्वाधीनता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी आज देश का युवा वर्ग बेरोजगारी से परेशान है। अतः संविधान में परिवर्तन करके रोजगार का अधिकार मौलिक अधिकारों में शामिल किया जाय, चुनाव की मंहगी प्रक्रिया को समाप्त कर उसे सरल एवं सस्ता बनाया जाय तथा देश में बढ़ते काला बाजारियों एवं भ्रष्ट पूंजीवादियों को सख्त से सख्त सजा दी जाय, तभी देश में फैला असन्तोष दूर हो सकेगा अन्यथा एक दिन रक्तरंजित सशस्त्रक्रान्ति निश्चित है।



सार्वदेशिक आर्यवीरदल का शिविर, १ जून से १५ जून तक गुरुकुल काँगड़ी में हुआ। उसके दीक्षान्त समारोह के अवसर पर व्यायाम-प्रर्दशन में मलखम्भ का एक दृश्य। (यह १५.६.८१ को हुआ)

एकांकी नाटक

छात्रावास–जीवन

ले० रामपालसिंह वर्मा,

छात्र, बी० ए० (फाइनल)

प्रथम दृश्य

(कालेज–छात्रावास का डबल सीटेड कमरा। कमरे का सामान अस्त–व्यस्त पड़ा है। एक मेज़ पर समानान्तर किताबें रखकर उन पर ग्लास–प्लेट को टोपो करने के लिए रखा हुआ है। मेज़ की दराज़ में वार्डन की नज़रों से बचने के लिए एक हीटर रखा हुआ है जिसका तार बाहर लटक रहा है। एक कोने में चाय के बर्तन पड़े हुए हैं जिन पर मक्खियां भिनभिना रही हैं। खिड़की में सुराही रखी हुई है जिसकी गर्दन ग़ायब है। दीवार पर एक ओर महात्मा गांधी, पंड़ित नेहरू आदि और दूसरी ओर हेमामालिनी, नीतूसिंह आदि की तस्वीरें लगी हुई हैं। शाम के सात बजे हैं। दो छात्र कमरे में प्रवेश करते हैं।)

नीरज : पार्टनर ! आज तो खाना खाकर बोर हो गये। क्या जली हुई–सी दाल बनी हुई थी, चपातियां अर्धसिकी और वह भी ठंडी। पनीर की सब्ज़ी तो ऐसी थी कि नाक पकड़कर गोता लगाने पर भी पनीर का एक टुकड़ा भी हाथ लग जाये तो ग़नीमत समझो।

राजेश : अरे यार ! तुम भी क्या बात करते हो ? हमेशा ही कौन सा अच्छा खाना बनता है ? मैस में तो हमारे लिए खाना थोड़े ही बनता है, मैनूफ़ैक्चर किया जाता है। सो कच्चा, पक्का, ठंडा–गर्म गला–सड़ा चाहे जैसा हो खिला दो लड़कों को। खैर, छोड़ो इन बातों को। यह तो रोज़–रोज़ का रोना है। अब यह बताओ कि तुमने प्राणिशास्त्र की आकृति बनाई या नहीं ? और मुझे तो अभी रसायनशास्त्र के प्रश्न भी करने हैं। पिछला सारा कार्य अधूरा पड़ा है।

नीरज : अरे यार ! तुम भी क्या बोर आदमी हो ? हर समय पढ़ने की ही सूझती है। जुलॉजी का फीगर मैं टोपो कर ही रहा हूँ। (टेबल की ओर इशारा करता है) और मेरे बाद तुम भी कर लेना। अब रही अधूरे काम की बात सो अभी तो परीक्षा के बहुत दिन पड़े हैं। स्वाध्यायावकाश और किसलिए होते हैं ? अभी से घोटा लगाना शुरु कर दिया तो कालेज लाइफ़ का आनन्द कब लोगे ? यही तो दिन हैं मौज करने के।

राजेश : नहीं यार ! इस तरह काम नहीं चलेगा। हमारा तो कल रसायनशास्त्र का पीरिएड है और अब परीक्षाएं भी नज़दीक आ गई है। छमाही परीक्षा में तो वैसे भी गोल हैं। घर वाले अंक देखकर क्या कहेंगें ? (पढ़ने के लिए किताब उठाकर खोलता है। इसी बीच एक तीसरे लड़के का प्रवेश जो एक साल फ़ेल हो चुका है।)

मनौज : राजेश ! तुम भी क्या हर समय लिखते ही रहते हो ? मैं तो जब होस्टल आता हूं तब तुम्हें पढ़ते ही देखता हूं। कभी-कभी तो होस्टल लाइफ़ का भी आनन्द लिया करो। यही तो लाइफ़ है मज़े करने कराने की। घर वालों से पैसे मंगवा लेते हैं और मज़े की छनती है। (चौंककर) अरे ! हां यार ! मै तो बताना ही भूल गया कि आज जमना टाकीज़ में "ज्वालामुखी" फिल्म लग गयी है। बहुत ही अच्छी फ़िल्म है। क्यों नहीं आज रात का शो ही देख लिया जाय ? क्यों भई नीरज क्या विचार है ?

नीरज : (खुश होकर) जीओ ! अपना तो मूड वैसे ही ख़राब हो रहा था। पिक्चर देखकर मूड भी वन जायगा। मैं भी तो इसे यही समझा रहा था लेकिन इसके दिमाग़ में भूसा भरा है। हर समय पढ़ाई लिखाई के अलावा इसे तो कुछ सूझता ही नहीं। अरे हमें भी तो देखो। हफ़्ते में दो पिक्चर तो देखते ही हैं और सन्डे की अंग्रेज़ी की पिक्चर अलग। अपना तो सिद्धान्त यही है खाओ, पियो, मौज उड़ाओ। क्या हुआ ? अगर छमाही परीक्षा में चार में शून्य आ गया तो अंक पत्र घर तक पहुंचने ही कौन देता है। (दोनों मिलकर राजेश को बोर करते हैं और उसे तैयार कर लेते हैं। उसके न आने पर उसे बुरा भला कहते हैं। तीनों एक बजे रवाना हो जाते हैं।)

(पीछे से वार्डन राउण्ड पर आता है और उन तीनों के नाम लिखकर ले जाता है।)

दूसरा दृश्य

(छात्रावास का वही कमरा है। रविवार का दिन है तथा सुबह के सात बजे हैं। दोनों पार्टनर रज़ाई में पड़े खर्राटे ले रहे हैं। रात को शौ देखकर लौटे हैं। एका-एक दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ आती है।)

नीरज : अरे ! यह कौन बेवकूफ़ है जो ठीक से सोने भी नहीं देता। तुम्हारी क़िस्मत में नींद लेना नहीं लिखा तो दूसरों को तो सुबह-सुबह बोर मत करो।

आगन्तुक : जी, मैं हूं रामू जमादार। झाड़ू लगाने आया हूं। ज़रा दरवाज़ा तो खोलिये।

नीरज : अरे ! कमबख़्त तुझे भी भी अभी आना था। जा-जा फिर लगा देना झाड़ू। अभी सोने दे। फिर (उसके जाने पर धीरे-धीरे बड़बड़ाता है।) उल्लू का पट्ठा आ गया है सुबह-सुबह शक्ल दिखाने ताकि दिन भर कहीं आराम नसीब न हो।

(नेपथ्य में जाने की पद-ध्वनि होती है जो धीरे-धीरे मन्द होकर समाप्त हो जाती है)-(नीरज फिर से रज़ाई में मुंह ढांप लेता है और ख़र्राटें शुरु हो जाते हैं। थोड़ी देर बाद ही मेज़ पर रखी घड़ी आठ बजाती है। अलार्म बज उठता है। नीरज तथा राजेश दोनों जाग पड़ते हैं। रज़ाई में से ही हाथ निकालता है और ज़ोर से मेज़ पर लुढ़क जाती है तथा अलार्म बन्द हो जाता है।)

नीरज : यार ! आदमी ने यह घड़ी भी क्या मनहूस चीज़ बना दी है। बिलकुल सैंसलैस की तरह डिस्टर्ब कर देती है। जब देखो टिक-टिक करती ही रहती है। होस्टल में देखो तो भागती नज़र आती है। अभी आठ बजे हैं और थोड़ी देर में दस बजा देगी और क्लास में देखो तो सुई आगे खिसकने का नाम नहीं लेती। अगर क्लास में नींद आ जाय तो भले ही तीन से चार या दो से तीन बजा दे वरना क्या मजाल जो किसी थ्योरी के पीरिएड में ढंग से चलती हो ?

राजेश : (घबरा कर उठता है) अरे यार ! ग़ज़ब हो गया। आठ बज गये और तुमने मुझे जगाया भी नहीं और अलार्म भी बन्द कर दिया। अब सबसे पहले तो बाथ रूम के सामने क्यू में खड़ा होना पड़ेगा और अगर घंटा आध घंटा में नम्बर आ भी गया तो नौ बजे तक जल भी चला जायेगा। सो नहाने की तो छुट्टी हो जायगी। नौ बजे के बाद तो मैस में नाश्ता भी नहीं मिलेगा।

नीरज : भई पार्टनर, मैं तो यार ! किसी की मीठी नींद तोड़ने से बड़ा पाप नहीं समझता। इस कमबख्त घड़ी ने जगा दिया वर्ना अपना ड्राईक्लीनिंग से हीं काम चलता हो तो ठंडा पानी डालकर सर्दी में शरीर को क्यों कष्ट दिया जाय ?

राजेश : (हताश होकर) अच्छा तो भई ! तुम्हारी ही बात सही। मैं भी आराम करता हूं। (दोनों फिर रजाई में मुंह ढांप लेते हैं।)

कहानी

प्रायश्चित्त के आँसू

ले०-विद्यार्थी-श्यामसुन्दर

एक दिन जब मैं अपने पड़ोसी जयन्त के घर गया तो देखा कि वह अपनी पत्नी को बुरी तरह पीट रहा है। मुझे देखकर भी उसका गुस्सा शान्त नहीं हुआ। बहुत मुश्किल से उसे मैंने पकड़ा और उसका गुस्सा कुछ शान्त किया। अक्सर ही शराब पीकर वह अपनी पत्नी को अकारण मारता रहता है।

मैं जयन्त को बहुत निकट से जानता हूँ। वह बहुत ही क्रूर स्वभाव का है जबकि उसकी पत्नी बहुत ही शान्त गम्भीर और सुलझे दिमाग की महिला है। मैं उन्हीं के गुणों के कारण उसके यहां आता जाता रहता हूँ।

एक दिन सुबह ही शोर सुनकर उठा और भागकर उनके यहां गया तो देखा कि जयन्त अपनी पत्नी को पीट रहा है और पास ही खड़ी उसकी चार वर्ष की बच्ची कह रही है-"पापा, मम्मी को छोड़ दो और उसकी जगह मुझे पीट लो।" मेरी आंखों में आँसू भी आ गये, लेकिन उस पिशाच का दिल नहीं पिघला। मैं जबर्दस्ती उसे तब तक पकड़े रहा जब तक कि उसकी आसुरी-वृत्ति शान्त न हो गई। मैंने व्यथित हृदय से कहा-भाभी, तुम इस नर पिशाच से तलाक क्यों नहीं ले लेती ; तुम्हारे पिता तो सुयोग्य वकील हैं।

भाभी ने बड़े ही गम्भीर स्वरों में कहा-"भैया ? भारतीय नारी की शादी सिर्फ एक बार होती है। दूसरी शादी तो वह चिता के साथ ही पसन्द करती है। उनमें यह पागलपन शराब की देन है। मैं प्यार से उनकी आसुरी-वृत्तियों को भगा दूंगी। मेरे हृदय में भारतीय नारी का गौरव है। सीता, अनसूइया, सती सावित्री आदि भारतीय नारियों के रक्तकण मुझमें विद्यमान हैं। मैं उन्हें मनुष्य बना लूंगी। यह कहते-कहते उनके आँखों में आँसू झलकने लगे। भाभी के महान चरित्र की कल्पना करता मैं अपने घर चला आया।

एक दिन जयन्त ने खूब शराब पी और बेहोशी की सी हालत में घर आया। अपने घर के बाहर खड़ा मैंने देखा कि उसने अपने कपड़ों में ही मल-मूत्र त्याग रखा है। घृणा से मैंने मुंह फेर लिया।

सुबह जब जयन्त का नशा उतरा तो उसने देखा कि उसके साफ़-सुथरे कपड़े पत्नी ने पहना दिए हैं और सामने ही उसके गन्दे कपड़े मल-मूत्र से सने साफ कर रही है तथा पास खड़ी बच्ची सहमी हुई उसे देख रखी है ।

बेटी का भोला और उदास चेहरा तथा पत्नी की सेवा देखकर उसकी इन्सानियत जो सो चुकी थी, जाग उठी और उसकी आँखों में गंगा-जमना बह चलीं । भावातिरेक से उसने बच्ची को गोद में उठा लिया । पत्नी भी दौड़कर आ गई । जयन्त ने बच्ची को आँसुओं से नहला दिया । पत्नी की भी आँखों में पति में यह परिवर्तन देखकर खुशी एवं जीत के आँसू बह चले ।

मैंने देखा, इसके बाद जयन्त ने कभी भी अपनी पत्नी को कुछ नही कहा । जब मैं जयन्त के घर गया तो देखा जयन्त, भाभी और बच्ची ख़ुशी से हंस रहे है। पास ही खड़ी बच्ची कह रही थी– "पापा ! अब तो आप मम्मी से बहुत प्यार करते हो और मुझसे भी । अब तो मम्मी को कभी नहीं पीटोगे न ?"

"नहीं बेटे !" कहते-कहते जयन्त ने बच्ची को गोद में उठा लिया और पश्चात्ताप के आँसू उसकी आँखों से बह चले ।

मैंने भाभी की इस विजय पर उन्हें बधाई दी और अपने वे शब्द जो मैंने कभी कहे थे उनके लिए क्षमा-याचना की और भारत की उस महान नारी को धन्य कहता हुआ वापस घर आ गया ।

व्यंग्य

प्राचीन एवं अर्वाचीन युग

ले०-सुरेश चन्द्र

छात्र—एम०ए० (हिन्दी), द्वितीय वर्ष

जानकी के पास यदि होती एक माचिस ।
वाटिका अशोक में शोक वास पाती क्यों ?

फ़ायर ब्रिगेड यदि रावण के पास होता ।
कपि के जलाये स्वर्ण लंका जल जाती क्यों ?

टेलीफोन होता यदि द्वारिका से मथुरा को ।
कृष्ण के बियोग में राधा बिलखाती क्यों ?

फ़ाउन्टेन पेन यदि शकुन्तला के पास होता ।
नखों से दुष्यन्त को पत्र लिखे जाते क्यों ?

लाउड स्पीकर यदि ब्रह्मा जी के पास होता ।
चार—चार अपने वे आनन बनाते क्यों ?

वायुयान एक जो गणेश जी के पास होता ।
मूषक को अपना वे वाहन बनाते क्यों ?

सुन्दर सिनेमा हाल कृष्ण जी के पास होता ।
गोपियों के संग रास रँग वे मचाते क्यों ?

ये सब वस्तुएं प्राचीन युग में होतीं तो ।
सुरेश चन्द्र इस पर कविता बनाते क्यों ?

परिश्रम का महत्व

ले०—शहीद हसन
छात्र विद्यालंकार, प्रथम वर्ष

मानव जीवन का लक्ष्य

मनुष्य सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी है। अपने सद्‌गुणों का विकास से उसने उत्तरोत्तर प्रगति की है। संसार का प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। संसार का समस्त चक्र सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिए ही चल रहा है। सुख की प्राप्ति ही मानव-जीवन का लक्ष्य है चाहे वह सुख भौतिक हो या आध्यात्मिक। विकास की सीढ़ियों पर चढ़ने और सुख की प्राप्ति करने के लिए मनुष्य को बहुत संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष में उसे कितना शारीरिक एवं मानसिक श्रम करना पड़ा है, इसका अनुमान सरलता से नहीं लगाया जा सकता।

संसार एक कर्मक्षेत्र है

यह संसार एक कर्मक्षेत्र है। कोई भी प्राणी यहां एक क्षण भी निष्क्रिय और अकर्मण्य बनकर नहीं रह सकता। कर्मशीलता ही जीवन है और अकर्मण्तता मृत्यु। इसीलिए वेदों में कहा गया है—'कर्म करते हुए ही मनुष्य को सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए।' सृष्टि का प्रत्येक पदार्थ कर्मशीलता के चक्र में ही घूम रहा है। सूर्य, चन्द्र, तारे, वायु, आकाश किसी भी क्षण के लिए निष्क्रिय नहीं है। जब सृष्टि के सभी पदार्थ कर्मशील हैं तो फिर सृष्टि का सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य किस प्रकार अकर्मण्य रह सकता है?

परिश्रम और भाग्य

कुछ लोग कहते हैं कि भाग्य ही वास्तव में फल देता है। विद्या और पौरुष भी भाग्य के सामने निरर्थक हैं। जिसके भाग्य में परमात्मा ने जितना लिख दिया है, उसे उतना ही मिलेगा। उसमें से न तो रत्तीभर कम मिलेगा और न तिल भर अधिक, चाहे कोई लाख सिर कूटे, कितना ही परिश्रम करे। भाग्य कोई पहले से बनी हुई वस्तु नहीं है। मनुष्य अपने भाग्य का विधाता स्वयं ही है। यदि भाग्य

नाम की कोई वस्तु है भी तो वह परिश्रम के ही अधीन है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—'भाग्यवश रहते दीन, अधीन' अर्थात् भाग्य के वश में केवल वे ही व्यक्ति रहते हैं, जो दीन हैं, पराधीन हैं। श्रेष्ठ भाग्य सदैव परिश्रमी व्यक्तियों के पक्ष में रहता है।

परिश्रम के प्रकार

परिश्रम के मुख्यतः दो प्रकार हैं—एक शारीरिक और दूसरा बौद्धिक। शरीर के द्वारा किया गया परिश्रम शारीरिक होता है। वह हाथ-पैर आदि शरीर के अंगों द्वारा किया जाता है। शारीरिक अंगों को अधिक कष्ट न देकर केवल मस्तिष्क या बुद्धि द्वारा किया गया श्रम बौद्धिक होता है। किसान, मज़दूर आदि शारीरिक श्रम करते है और कवि, विचारक, सुधारक लेखक आदि बौद्धिक श्रम। दोनों का ही अपने-अपने स्थान पर महत्त्व है।

भौतिक सुखों की प्राप्ति

परिश्रम सफलता की कुंजी है। आज मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। जल, थल और आकाश सब उसके अधिकार में हैं। समुद्र से उसने लोहा लिया है। पहाड़ों की उंची से ऊंची चोटियों पर उसने अपनी पताका फहरा दी है। आकाश का कोना-कोना उसने छान लिया है। अज्ञेय से अज्ञेय और दुर्गम से दुर्गम स्थानों तक उसकी पहुंच हो गई है। यह परिश्रम का ही फल है। मनुष्य चन्द्रलोक और शुक्रलोक पर पहुंचने में सफल प्रयास में लगा है। यह शारीरिक और बौद्धिक परिश्रम की सफलता है।

आज पश्चिम ने वैज्ञानिक, आर्थिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में जो उन्नति की है, उसका मूल कारण परिश्रम ही है। इसके विपरीत भारत के पिछड़ेपन का मूल कारण यहां की भाग्यवादिता, अकर्मण्यता और आलस्य है। जिस देश के नागरिक श्रम की धूल से अपने मुख का अभिषेक नहीं करते वे कदापि उन्नति नहीं कर सकते।

कीर्ति लाभ

परिश्रम से भौतिक सुखों के साथ-साथ यश और कीर्ति भी मिलती है। विभिन्न आविष्कारों के साथ उनके आविष्कारकों का नाम आज भी जुड़ा हुआ है और सदैव जुड़ा रहेगा। विश्व के महापुरुष चाहे वे राजनीतिज्ञ हों या वैज्ञानिक,

कवि हों या चित्रकार, उद्योगपति हों या धार्मिक नेता सभी ने परिश्रम के द्वारा ही ख्याति प्राप्त की है। एक विद्यार्थी दिन-रात घोर परिश्रम करके परीक्षा में सर्वोत्तम उत्तीर्ण होता है तो उसका यश सर्वत्र फल जाता है। पुरस्कारों के साथ-साथ उसे उच्च सम्मान भी प्राप्त होता है।

मानसिक सन्तोष

परिश्रमी व्यक्ति को सफलता तो प्राप्त होती है किन्तु यदि एक बार उसे सफलता न भी मिले तो यह मानसिक सन्तोष रहता है कि उसने हर सम्भव प्रयत्न किया। उसे किसी प्रकार का पछतावा तो नहीं रहता कि यदि मैं परिश्रम करता तो कदाचित् सफल हो ही जाता। वह उस निठल्ले आलसी मनुष्य से हजारों गुना लाभ में रहता है जो हाथ पर हाथ रखे बैठा रहता है क्योंकि वह अपने कर्तव्य का पालन करता है। गीता में कहा गया है—"मनुष्य का अधिकार केवल कर्म में है, फल में नहीं।" अतः जो व्यक्ति केवल कर्म-भावना से ही परिश्रम करता है उसे मानसिक सुख, सन्तोष एवं शान्ति मिलती है।

महापुरुषों के उदाहरण

संसार के सभी महापुरुषों ने परिश्रम के द्वारा ही सम्मान और आदर पाया है। परिश्रमी मनुष्य ही सफलता देवी का वरण करते है। परिश्रम से धनहीन किन्तु योग्य व्यक्तियों ने उच्चतम पद प्राप्त किये है। इतिहास इस प्रकार के अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है। गैरीबाल्डी, अब्राहीम लिंकन तथा हिटलर आदि सभी ने परिश्रम के बल पर उच्च स्थान पाया।

राज्य-सम्बन्धी अनेक कठिनाइयों पर निरन्तर अथक परिश्रम द्वारा विजय पाने पर ही अकबर महान बना। गुप्त राजाओं ने घोर परिश्रम से ही गुप्त-साम्राज्य की स्थापना की जिसे इतिहास में आज तक 'स्वर्णकाल' के नाम से पुकारा जाता है। छत्रपति शिवाजी अनवरत प्रयास द्वारा ही हिन्दू जाति की रक्षा के अवलम्ब बने। नेपोलियन बौनापार्ट एक साधारण बाप का बेटा था, किन्तु अपनी व्यक्तिगत कठोर साधना से वह एक दिन फ्रांस का भाग्य-निर्माता और विश्वविख्यात महापुरुष बना।

नये भारत के निर्माता महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, पं० मदनमोहन मालवीय आदि परिश्रम की साक्षात् मूर्ति थे। पण्डित जवाहरलाल नेहरू के 'आराम हराम है' नारे से भारत का बच्चा-बच्चा परिचित

है। औद्यौगिग क्षेत्रो में बिड़ला, टाटा तथा डालमिला आदि परिश्रम के जीते-जागते उदाहरण है।

उन्नति का मूल-मंत्र

सच तो यह है कि परिश्रम ही उन्नति का मूल-मन्त्र है। वही मनुष्य की आत्मा है, वही कर्तव्य है, वही अवनति के गर्त में पड़े हुए राष्ट्र की उद्धार-रज्जु है। वही विकास की पराकाष्ठा है और वही धर्म है। परिश्रमी मनुष्य को ही विजय श्री वरण करती है। किसी ने सच कहा है —

श्रम ही सो सब मिलत है, बिनु श्रम मिले न काहि।
सीधी उंगरी घी जमौ, कबहूं निकसत नाहि ।।

भक्तवर प्रह्लाद

एक क्रान्तिकारी प्रेरणात्मक जीवन

ले०-महावीर 'नीर' विद्यालंकार

(पूर्व छात्र)

कभी-कभी संसार में ऐसा भी होता है कि अत्यन्त दुष्ट एवं अत्याचारियों के यहां सज्जन तथा दिव्यात्माओं का जन्म हो जाता है। भक्त प्रह्लाद भी ऐसे ही तामसिक वृत्तियों के सेनापति हिरण्यकशिपु के घर में जन्मे थे। उनकी माता का नाम कयाधू था। जब हिरण्यक कठोर तप के द्वारा अपनी भौतिक शक्तियों की साधना में जुटा हुआ था और अपने को संसार में एक छत्र सम्राट बनाने के उद्यम में लगा हुआ था तब नारद मुनि ने कयाधू को अपने आश्रम में रखकर निर्मल भक्ति एवं सत्य धर्म का उपदेश दिया था। प्रह्लाद गर्भ में थे। मुनि के उपदेशों का गर्भस्थ बालक पर अप्रतिम प्रभाव पड़ा। कयाधू के चार पुत्र और सिंहिका नाम की पुत्री भी थी। यथा—

हिरण्यकाशिपोर्भार्या कयाधूर्नाम दानवी ।
जम्भस्य तनयादत्ता सुषुवे चतुरः सुताम् ।।
संह्लादं प्रागनुह्लादं ह्लादं प्रह्लादमेव च ।
तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुँ विप्रचितोऽग्रहीत् ।।

—भागवते ६/१८/१२-१३

यथासमय बालक प्रह्लाद का जन्म हुआ। प्रह्लाद अपने भाइयों में सबसे छोटे होते हुए भी गुणो में सबसे बड़े थे। वे सौम्य स्वभाव, सत्य-प्रतिज्ञ, संत-प्रकृति, जितेन्द्रिय एवं सबका आदर करने वाले थे। ग़रीबों पर विशेष स्नेह रखते

थे। अपने इन श्लाघनीय गुणों के कारण बालकपन से ही वे सबके प्यारे बनते गये। खेल-कूद को छोड़कर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति भगवान को भक्ति में थी किन्तु दूसरी ओर उसका पिता अपने भाई की मृत्यु के कारण भगवान की सत्ता से एवं उस समय के बड़े-बड़े राजाओं से द्वेष करता था।

एक बार हिरण्यक ने बड़े प्यार से अपने प्यारे पुत्र प्रह्लाद को गोद में बैठा कर पूछा— "पुत्र! संसार में तुम्हें सबसे अच्छा क्या लगता है?" हिरण्यक सोचता था कि प्रह्लाद कहेगा कि मुझे सबसे अच्छे आप लगते हैं किन्तु उसकी सब आशाओं पर पानी फिर गया, जब प्रह्लाद ने सहज भाव से कहा, "पिताजी! मुझे तो अपने तथा पराये के भेद के आग्रह से अलग प्रभु की भक्ति में मन को लगाना अच्छा लगता है। चाह होती है संसार के कोलाहल से दूर प्रभु के चरणों में बैठकर ध्यान करूं।"

हिरण्यकशिपु बालक इस बात को सुनकर बड़ा आश्चर्यचकित हुआ। वह अपने पुत्र को दूसरे मार्ग की ओर जाता देख ऊपर से नीचे तक जल उठा। उसका सारा शरीर क्रोध में कापने लगा। उसका क्रोध में आना भी स्वाभाविक था क्योंकि ईश्वर का नाम लेना तो उसकी दानवी प्रवृत्तियों के खिलाफ था। भौतिक साधनों की उसके यहां भरमार थी। (पढ़िये भागवत् के ७वें स्कन्ध का ४ अध्याय)। तब भौतिकवाद का नग्न ताण्डव हो रहा था। भला ऐसे राक्षसवृत्तियों के राजा के राज्य में क्यों कर कोई भगवान का नाम लेकर बेमौत मरता? वहां तो उसकी आज्ञा ही सर्वोपरि थी। वह उस समय का एकछत्र सम्राट था। अपने सेवकों और राज्याधिकारियों को उसका स्पष्ट आदेश था कि "राष्ट्र में जहां-जहां धर्म-कर्म हो, वर्णाश्रम धर्म का पालन हो वह सब नष्ट कर दो। ब्राह्मणों को, क्षत्रियों को, गायों को' वेदों को जला दो, जड़मूल से विनष्ट कर दो। यथा—

विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान्।
देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्य च परायणम्॥ २/७/११
यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः।
तं तं जनपदं यात सन्दीपयत वृश्चतः॥ अ.२/स्कंध.७/श्लो.१२

तदनन्तर उसके अनुचरों ने नगर के नगर, गांव के गांव उजाड़ दिये, हरेभरे उद्यान काट डाले। जला डाले। नष्ट कर डाले। भयंकर मारकाट मचा दी —

इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसाऽऽहृताः।
तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः॥ २/७/१३

पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् ।
खेटखर्वटघोहाँश्च ददहुः पत्तमानि च ॥ २/७/१४

वस्तुतः राक्षसवृत्ति के मनुष्य स्वभाव से ही दूसरों को सताकर सुखी होते हैं। वे जनता का नाश करने लगे। इस प्रकार हिरण्यक का राज्य तपने लगा।

किन्तु अपने पुत्र प्रह्लाद की बात सुनकर उसका माथा ठनका। उसने उसे विद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा। बालक प्रह्लाद षण्ड और अमर्क नामधारी गुरुओं के शिष्य बने। गुरु भी नाम यथानाम तथागुण थे। वे राजा के सेवक और पराधीन थे। वे बालकों को राजनीति और अर्थनीति की शिक्षा के साथ हिरण्यक की विचारधारा का पोषण भी करते थे। उनके पाठ का मूल आधार अपने और पराये का झूठा आग्रह था। उनकी शिक्षा राग-द्वेष से पूर्ण थी। यथा—

तौ राजा प्रापितं बाल प्रह्लादं नय कोविदं । ५/७/२

किन्तु प्रह्लाद पर माता के नारद मुनि के आश्रम में निवास के कारण आध्यात्मिक संस्कार इतने गहरे जमे हुए थे कि गुरुओं की अधूरी, उल्टी शिक्षा उन पर अपना कोई प्रभाव न जमा सकी। वे गुरुजनों को ही सत्यमार्ग बताने लगे। गुरु यह देखकर एकदम गरज उठे। उन्होंने कहा- "खबरदार, अब कभी ऐसी बात न कहना", किन्तु प्रह्लाद नित्य ही खण्डन-मण्डन करने लगे। गुरु यह देखकर बड़े झल्लाये। भागे-भागे हिरण्यक के पास गये। प्रह्लाद के विचारों की सर्वत्र चर्चा की।

हिरण्यक बात सुनते ही आग-बबूला हो गया। उसने प्रह्लाद को गोद से उठाकर पटक दिया। अनेक शंकायें उसके हृदय में घर करे गयीं उसने सोचा शायद गुरुओ की दृष्टि बचाकर कोई इसे इस प्रकार की शिक्षा देता है। यथा— "विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्नभिद्यतास्य धीर्यथा" (अ.५/स्क.७/श्लो ७) किन्तु अगले ही क्षण प्रह्लाद की वही रटन्त देखकर उसके नेत्र अंगारों से दहकने लगे। होंठ फड़फड़ाने लगे। उसने अनुचरों से कहा — "इस कुलांगार को मेरे सामने से ले जाओ और मार डालो" —

आहामर्षरुषाविष्टः कषायी-भूतलोचनः ।
वध्यतामाश्वयं वध्यो निःसारयत नैर्ऋताः ॥ ५/७/३४

आज्ञा सुनकर दुष्टों ने प्रह्लाद को बहुतेरा डराया धमकाया। अनेक शारिरीक यातनायें एवं मानसिक कष्ट दिए। अनेक प्रलोभन भी दिये किन्तु प्रह्लाद को ईश्वर की सत्ता मानने और उसकी भक्ति एवं प्रचार से विमुख न कर सके।

यदि हम इस कथा को वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा उस समय की राजनैतिक, सामाजिक व धार्मिक अवस्थाओ के परिप्रेक्ष्य में एक संगति-परक, सत्य-परक दृष्टि से देखें तो यह आस्तिक प्रवृत्तियों और नास्तिक प्रवृत्तियों का झगड़ा था। सत्ता-परिवर्तन का युद्ध था। भौतिकवाद से, अहंवाद से अध्यात्मवाद की लड़ाई थी। दूसरे शब्दो में शुद्ध राज्य-क्रान्ति थी।

चूंकि राजनेतिक दृष्टि से हिरण्यक एकछत्र सम्राट बना हुआ था। समस्त छोटे-बडे राजा उसके आक्रोश से पीड़ित थे। वे अपने लोक अर्थात् स्थानों को छोड़-कर भयभीत लुके-छिपे फिरते थे। बड़े-बड़े नगर और ग्राम उसने उजड़वा दिए थे।

धार्मिक दृष्टि मे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में से मोक्ष का तो कहीं नाम ही नहीं था। काम और अर्थ का सेवन होकर धर्म गौण बन गया। अखण्ड भोतिकता का साम्राज्य था। ईश्वर के प्रति अश्रद्धा का भाव उत्पन्न किया जा रहा था। दिव्य-भावनाओं को समूल नष्ट किया जा रहा था। ईश्वर की सर्वव्यापकता खतरे में पड़ी थी।

इस प्रकार आर्यत्व का विनाश और अनार्यत्व का खुला प्रचार व प्रसार था। सनातन वैदिक पथ पर कुठाराघात हो रहा था। धर्मात्मा लोग तथा निरीह प्रजा बड़े संकट में थी। हिरण्यक के दुर्दान्त अत्याचारों से प्रजा तंग थी। समस्त राज्याध्यक्ष उसके उग्र स्वाभाव से तंग थे, यथा—"तस्योग्रदण्डसंविग्ना सर्वे लोकाः सपालकाः" (अ.४/स्क.७/श्लो.२१)। सज्जन लोग ईश्वर का स्मरण करते हुए उसके विनाश की प्रार्थना करते थे। क्षत्रिय राजा आकुल-व्याकुल थे चुपके-चुपके अन्दर ही अन्दर एक ज्वाला भड़क रही थी। वह पुत्र पर ही घोर अत्याचार कर रहा था। यह सब देखकर अनेक राज्याधिकारी एवं प्रजाजन प्रह्लाद-समर्थक होते जा रहे थे। भगवान की भक्ति से प्रह्लाद की आत्मिक शक्ति इतनी प्रबल हो गयी थी कि उसने उस भंयकर वातावरण में भी अपनी बात कहने का महान् प्रयास किया। पिता से लड़ाई ठान ली।

यदि संसार के चक्र को देखें और इतिहास के पन्नों पर दृष्टि दौड़ायें तो अपने देश की ही नहीं अपितु विदेशों की भी ऐसी अनेक घटनायें दृष्टिगोचर होंगी। फ्रांसीसी इतिहास के पन्ने के पन्ने इन घटनाओं से भरे पड़े हैं। ऐसे क्रूर, दम्भी, अत्याचारी एवं अपने को सब कुछ समझने वाले शासकों का "महाभारत" में खुला वर्णन है। आज भी पड़ोसी देशों में प्रजा-जन उनसे विस्फोट के लिए तैयार हैं। याहिया और अयूब पहले ही इस दाम्भिक प्रवृत्ति से नष्ट हो चुके हैं। यह संसार का अटल नियम है कि कोई भी प्राणी जब दिव्य जनों, वेद गायें, ब्राह्मण, निरोह प्रजा पर अत्याचार कर ; ईश्वर की सत्ता को चुनौती देता है तब उसका विनाश अवश्य होता है। वह अपने कुकर्मो के द्वारा मृत्यु का मार्ग प्रशस्त कर लेता है, यथा—स्क० ७/अ० ४/श्लो० २७।

अन्ततोगत्वा अपने पुत्र प्रह्लाद की इन प्रवृत्तियों के कारण हिरण्यक चिन्तित रहने लगा। षण्ड और अमर ने उसे समझाया बुझाया। पाठकगण ! प्रकरण-भेद से हम यहां एक घटना का उल्लेख करना चाहेंगे जो प्रह्लाद के साथ जोड़ी गयी है। कहते हैं "अपने भाई हिरण्यक को चिन्तित व दुखी देखकर 'होलिका' ने हिरण्यकशिपु से प्रह्लाद को मार डालने का एक उपाय बताया। उसके पास 'अग्नि रक्षक-वस्त्र' थे। वह उन्हें पहन कर प्रह्लाद को लेकर अग्नि में कूद पड़ी। वह खुद जल गयी। प्रह्लाद बच गये। "किन्तु इस कथा" में कोई सार नहीं। लगता है कथा वाचकों ने कथा को चटपटी करने के लिए वैसे ही बाद में जोड़ दी है क्योंकि स्पष्ट है—

दितेर्द्वाविव दायादो दैत्य दानववन्दितो।

हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ॥ (६स्क./१८अ./श्लो॰ १४)

दिती के यशस्वी दो ही पुत्र थे। हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। 'होलिका' नाम की कोई पुत्री नहीं थी। खैर, तदनन्तर प्रह्लाद के प्रभाव को बढ़ता देख चिन्ता-ग्रस्त होकर हिरण्यक का क्रोध सातवें आसमान पर जा पहुंचा। उसने प्रह्लाद को वरुण के पाशों (अ.५/स्क.७/श्लो.५०) अर्थात् कारागार में प्रतिबन्धित करवा दिया। उसको भूखा-प्यासा रखा गया। उसे ईश्वर का नाम न लेने पर एवं अपने विचार बदलने पर मजबूर किया गया किन्तु प्रभु-भक्ति में लीन आत्मिक शक्ति के धनी उस वीर युवक सत्याग्रही को कोई प्रलोभन तथा अत्याचार सत्यमार्ग से डिगा न सके।

सत्य ही, क्रान्तिवीरों, धर्मवीरों तथा राष्ट्रवीरों ने क्या-क्या कष्ट नहीं झेले ? पर कभी सिर नहीं झुकाया। स्मरण करें वीर हकीकतराय को, बन्दावीर वैरागी को, गोविन्द सिंह गुरु के दो नन्हें लाड़ले बेटों—जोरावर सिंह व फतह सिंह—को जो धर्म की वेदी पर बलिदान हो गये। कारागार की सुदृढ़ दीवारें, चमचमाती तलवारें और लौहशृंखलायें भी इनके महान् सत्य-संकल्प को, असीम धैर्य को, महान् व्रत को डिगा न सकी। वसुदेव और देवकी को भी कारागार में बन्दकर कंस ने महान् क्रान्ति को जन्म दिया। कारागार की सुदृढ़ दीवारों में ही जन्मे थे 'महाभारत' युद्ध के अप्रतिम सूत्रधार वीर शिरोमणि योगिराज श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज। धार्मिक क्रान्ति के क्षेत्र वीरों ने ही सींचे हैं। वे अमर हैं। उनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

युवक प्रह्लाद भी एक ऐसा ही क्रान्तिवीर था जिसने अपने पिता हिरण्यक की सत्ता को खुली चुनौती दी थी। आखिर कड़े पहरे में प्रह्लाद को फिर उन्हीं राजभोगी गुरुओ षण्ड और अमर्क को सौंपा गया किन्तु प्रह्लाद अपने प्रण से कब हटने वाला था ? 'न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः' धैर्यवान् पुरुष न्याय के पथ से विचलित नहीं हुआ करते। वह गुरुओं की अनुपस्थिति मे युवक विद्यार्थियों में क्रान्तिकारी विचार भरने लगा। उनको एकत्र करके उसने वे सामयिक भाषण दिए, कि समस्त बालक उसके प्रभाव में आने लगे। प्रजा भी उसके विचारों से अवगत होने लगी, जागृत होने लगी। क्रान्तिकारियों का एक व्यापक समूह बनने लगा। सर्वत्र उसके विचारों की गूंज होने लगी। वह कहता कि—तुम लोग अपने दैत्यपने का, आसुरी सम्पत्ति का, त्याग कर समस्त प्राणियों पर दया करो। प्रेम से उनकी भलाई करो। इसी से भगवान प्रसन्न होते हैं, यथा-

तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदयम्।
आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः॥ (६/७/२४)

हे दानव बन्धुओ ! समस्त प्राणियों को अपने समान समझकर, सर्वत्र विराजमान्, सर्वशक्तिमान भगवान का स्मरण करो यथा—

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे॥ (७/७/५३)

वह अपने साथियों और प्रजावर्ग से कहता कि तुम प्रभु पर श्रद्धा लाओ। वे मन की वस्तु हैं। अन्तरयामी को शुद्ध अन्तरात्मा के द्वारा ही जाना जा सकता है यथा-

भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः।
वैशारदी धी श्रद्धातः स्त्री बालानां च मे यथा॥ (७/१/१७)

हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानस्त ईश्वरः।
इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत्॥ (७/७/३२)

वेद भी कहता है– "पश्यन्तिसर्वेक्षुणा न सर्वे मनसा विदुः" (अथर्व. १०/८/१४)।

इस प्रकार प्रह्लाद के इन ओजस्वी विचारो का साथियों तथा प्रजावर्ग पर गहरा प्रभाव पड़ा (भागवत ७/८/१ देखें)। अनेक ने विविध शंकायें की, उसने उनके समुचित, सामयिक उत्तर दिए। इस प्रकार उसके विचारों की धूम मच गयी। प्रजा उसकी ओर होने लगी। कुछ वीर एवम् धर्मात्मा तो इस अवसर की बाट देख रहे थे। हिरण्यक साम-दाम-दण्ड-भेद आदि सभी नीति अपना कर थक गया। गुरुओं ने फिर हिरण्यक से कहा + सब बात जानकर तथा सुनकर हिरण्यक शिपु का खून खौल उठा। वह आपे से बाहर हो गया। उसने प्रह्लाद से कहा— 'तू मिथ्या प्रचार करता है, लोगों को मुझसे फाड़ना है। बगावत करता है। "यथा आप भी पढ़िये भागवत का अर्थ सहित यह श्लोक—'मूर्ख! तू बड़ा उद्दण्ड हो गया है, स्वयं तो नीच है ही, अब हमारे कुल के बालकों को भी फोड़ना चाहता है। तूने बड़ी ढिढाई से मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है। आज ही तुझे यमराज के घर भेजकर इसका फल चखाता हूँ—

हे दुर्विनीत! मन्दात्मन्कुल भेदकराधम्।

स्तब्धं मच्छासनोद्वृतं नेष्येत्वाघ यमक्षयम्॥ (अ.८/स्क.७/श्लो.६)

किन्तु अपने पिता को समयोचित चेतावनी देते हुए उसने कहा—"छोटे से बड़े जीव सब भगवान् के आश्रय में हैं। मेरे और आपके ही नहीं अपितु यह सब बलों के बल हैं। यह सर्वशक्तिमान् प्रभु सर्वत्र हैं। पिताजी! आप अपना यह असुर भाव छोड़ दीजिए। अपने मन को सबके प्रति समान बनाइये। मन में सबके प्रति समता का भाव लाना ही भगवान् की भक्ति है।" यथा—

न केवलं मे भक्तश्च राजन्, स वै बलं बलिनां चापरेषाम्। (८/७/८)

स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसावोजः, सहःसत्व बलेन्द्रियात्मा। (८/७/९)

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः।

ऋतेऽजितादात्मनः उत्पथस्थितात् तद्धिह्यनन्तस्य महत् समर्हणम्।।"(८/७/१०)

यह सुनकर हिरण्यक बोला—'तू मेरे सिवाय ओर किसी को जगत् का स्वामी बताता है। तेरे बहकने की हद हो गयी। अच्छा मेरी इस राजसभा के खम्भे में भी तेरा जगदीश्वर है। तू उसे सर्वत्र बताता है यथा—

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ।
क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात् स्तम्भो न दृश्यते ।। (अ.८/७/१३)

प्रह्लाद ने फिर कहा कि वह सर्वत्र है। तब प्रह्लाद को हिरण्यक पहले तो डांटता और झिड़कता रहा किन्तु फिर भी प्रह्लाद अपने विचारों पर अडिग रहा। यह देखकर हिरण्यक भयंकर क्रोध मे पागल हो हाथ में खड्ग लेकर सिंहासन से कूद पड़ा। अभी वह प्रह्लाद पर वार करने ही वाला था कि तभी दैत्य सेनापतियों को भी भय से कंपा देने वाले उस अद्भुत और अपूर्व घोर शब्द को सुनकर हिरण्यक यह देखने लगा कि यह शब्द करने वाले कौन हैं, कहां से आ रहे हैं? (अ.८/स्क.७ का १७ वां श्लोक) आप भी पढ़िये और गुनिये—

स विक्रमन् पुत्रवधेप्सुरोजसा निशम्य निर्ह्लादमपूर्वमत्भुतम् ।
अन्तः सभायां न ददर्श तत्पदं वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ।।

वस्तुतः यहां हमें तनिक अपनी बुद्धि पर जोर देना होगा। प्रह्लाद समर्थक प्रजा-वर्ग ने भयंकर व अद्भूत कर्म कर डाला। भयंकर कोलाहल करते हुए, राजसभा को घेर कर अन्दर प्रवेश करके एक 'नृ-सिंह' या 'नर-सिंह अर्थात सिंह के समान भयंकर पराक्रमी पुरुष ने आगे बढ़कर हिरण्यकशिपु का वध कर डाला। वहा बड़ी मारकाट मची। क्रान्तिवीरों को अवसर की तलाश थी ही। धर्मवीर प्रह्लाद का जय-जयकार हुआ। एक नास्तिक सत्ता का विध्वंस होकर आस्तिक सत्ता का राज्यारोहण हुआ। वैदिक पथ का पुनरुद्धार हुआ। धर्मात्मा पुरुषों ने एकत्र होकर प्रह्लाद से कहा-"वेदवादी मुनियों की आज्ञा में रहकर राज्य करो।" यथा—

पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः। (अ.१०/स्क.७/श्लो.२३)

यह है भक्तवर प्रह्लाद के भक्ति भरे श्रद्धामय क्रान्तिपूर्ण जीवन की अद्भुत् चौंका देने वाली, प्रेरणादायी संगतिपूर्ण वैज्ञानिक अमर कहानी। वैसे नमक-मिर्च मिलाकर जैसी आप चाहें वैसी बना सकते हैं।

अतः आओ। इस नास्तिकता और अश्रद्धा के बढते हुए युग मे भगवान् की निर्मल भक्ति और उस पर श्रद्धा रखने का व्रत लेकर पापो और दुष्कर्मो तथा दुर्भावनाओ व दुष्कामनाओ की होली जला डाले। सदाचार, संयम, सेवा और समानता का भाव फैलाकर जीवन को ऊचा और महान् बनाये। सफल बनायें। श्रेष्ट कर्मो द्वारा संसार को आह्लादित कर दे।

श्री का निवास

—

*रचयिता—कुमार हिन्दी**

—

जब प्रह्लाद
देवेन्द्र को पराजित करके
तीन लोक का सम्राट बन गया।
तो इन्द्र बहुत आशंकित हुआ।
वह गुरु वृहस्पति के पास गया।
और कहा—
भगवन् !
मुझे भी श्रेयस् प्राप्त करने का
गुर बताइये।
बृहस्पति ने उसे
असुर गुरु शुक्राचार्य के पास भेजा।
शुक्राचार्य ने
उसे प्रह्लाद के पास भेजा।
इन्द्र ब्रह्मण का वेष बदल कर
प्रह्लाद के पास पहुँचा।
पहले तो
प्रह्लाद ने मना कर दिया
कि मुझे फुरसत नही है।
ब्रह्मण वेष धारी इन्द्र सविनय बोला,

[*आप गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के परम सम्मानीय कुलपति श्रीमन् बलभद्र कुमार जी हूजा है। सफल प्रशासक होने के साथ ही आप सफल काव्य रचयिता भी है। प्रस्तुत कविता आपके कविता-संग्रह "शीष पुष्प" से उद्धृत की गई है, जिसको सन् १९७१ में गुरुदीप प्रकाशन जयपुर ने प्रकाशित किया था —सम्पादक]

भगवन्, जब आपको फुरसत हो
तभी सही।
इस पर प्रह्लाद प्रसन्न हो गया, फिर
कालांतर में
उसने ब्राह्मण को बुलाया,
और बोला,
सुनिये ब्रह्मदेव,
हालांकि मैं राजा हूँ
मुझ में अहंकार अथवा दर्प
नहीं है,
मैं अपने ऊपर संयम रखता हूँ,
और खुलकर दान देता हूँ।
मैंने क्रोध को जीत लिया है,
मैं विद्वानों और महात्माओं
का आदर करता हूँ,
उनके उपदेश सुनता हूं,
वह मेरे साथ निर्भय होकर बात करते हैं।
इस प्रकार, मैं
ज्ञान और विवेक के आवरण में रहता हूं।
जहां महात्माओं का
सत्योपदेश होता है
वहां श्रेयस् का निवास होता है।
इसके बाद प्रह्लाद्र ने
ब्राह्मण से विदाई ली, और जाते जाते
पूछा,
हे विप्र, मैं आपकी सेवा में क्या
प्रस्तुत करता हूं ?
चतुर ब्राह्मण ने प्रार्थना की—
भगवन् ,
मुझे अपना शील प्रदान कर दीजिए।
प्रह्लाद भौंचक्का रह गया।
पर चूंकि एक बार कह चुका था,
उसने ब्राह्मण को अपना शील प्रदान कर दिया।
ब्राह्मण प्रह्लाद का शील लेकर

सहर्ष विदा हुआ।
प्रह्लाद इस अनोखी घटना पर
विचार कर ही रहा था,
कि उसके शरीर में से
एक ज्वलन्त और सुन्दर ज्योति
प्रकट हुई—
तुम कौन हो ? प्रह्लाद ने पूछा।
मैं शील हूँ। आपने मेरा विसर्जन कर दिया है,
अब मै ब्रह्मण के पास जा रहा हूँ।
इसके बाद
एक और ज्वलन्न और सुन्दर ज्योति प्रकट हुई।
तुम कौन हो ? प्रह्लाद ने पूछा।
मै धर्म हूँ ओर मैं भी ब्रह्मण के पास चला हूँ,
क्योंकि जहां शील है।
वहां मेरा वास है।
इसके बाद तीसरी ज्योति प्रकट हुई—
पहली दोनों से अधिक ज्वलन्त और सुन्दर।
पूछने पर बतलाया।
मै सत्य हूं।
और सद धर्म के पथ प्रदर्शन में
रहता हूँ।
इसके बाद वृत्त प्रकट हुआ,
और सत्य के पीछे चला गया।
अब प्रह्लाद के शरीर में बहुत शोर हुआ
और धमाके के साथ बल प्रकट हुआ।
मैं वृत्त से पृथक नहीं रह सकता,
यह कहता हुआ वह भी
ब्रह्मण के शरीर में प्रविष्ट हो गया।
इन सब के बाद
प्रह्लाद के शरीर से
चमकती, थिरकती
सुसज्जित
सुर सुन्दरी का अवतार हुआ—
मैं भी हूँ,

अब तक तुम्हारे शरीर में मेरा निवास था।
अब तुम्हें मेरी आवश्यकता नहीं है,
मैं सदा बल और पराक्रम के साये में रहती हूं।
प्रह्लाद डर गया—
तुम देवी हो,
बताओ वह ब्रह्मण कौन था ?
वह ब्रह्मण देवताओं का राजा इन्द्र था।
तुमने इसे त्रिलोक का राज्य दे दिया है।
तुमने अपने शील से तीन लोक जीते थे।
अब तुम्हारा
शील, धर्म, सत्य, वृत्त और बल
इन्द्र के पास हैं।
इसलिए मैं भी उसी के अधीन हूं।
हम सब वहीं रहते हैं
जहां शील का निवास है।
शील
सुचरित्र और परोपकार वृत्ति का
दूसरा नाम है।
हम ऐसा कोई कुकर्म न करें
जिससे किसी को हानि पहुँचे,
अथवा हमें शरमसार होना पड़े—
अपने कर्मों से हम
सदा गुरुजनों का आदर और सम्मान
प्राप्त करें—
यही शील का सार है।

सूर की मानवीय संवेदना

ले० भगवानदेव पाण्डेय

एम०ए०, पी-एच०डी०

प्रवक्ता, हिन्दी-विभाग

साहित्यिक विधा भावों को रंगस्थली है। भावों की व्यंजना, ध्वनन एवं स्वयं-प्रकाश में कविता और कला का व्यक्तित्व है जो सृष्टि के अन्य वस्तु-व्यापारों के व्यक्तित्व से उसे पृथक करके दिखाया जा सकता है। भावों का उद्रेक कविता के माध्यम से उसको सुगठित रूप में व्यंजित करके सर्वग्राही बनाया जाता है तो कला की सर्वश्रेष्ठ सार्थकता यही है कि उसका रहस्य तो पारदर्शी जनों को ही ज्ञेय हो, लेकिन उसका आग्रह सर्व-जन-सुलभ बन जाय।

भक्तियुगीन भक्तगण सर्वदा एक आश्चर्यजनक उच्चस्थल पर एक अलौकिक मनःस्थिति बनाकर भावनाओं के क्षेत्र में विचरण करते थे। एक परम रमणीय, अपरिचित सी समाधि की सी परिस्थिति की सृष्टि करके उसमें रमा देना इनका कवि-कर्म था। पर वे साथ ही मानवीय संवेदना के धरातल पर पाँव रख कर अगल-बगल देखते हुए चलते हैं। सूर ऐसे ही श्रेष्ठ भक्त कवियों में आते हैं।

मनुष्य जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्र में सूरदास की दृष्टि परिमित परिलक्षित होती है। बाल्यकाल और यौवन-काल के बीच की मनोरम परिस्थितियों का चित्रण एवं जीवन की रमणीयता को सूरदास जी ने ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया है कि पाठक उस भावधारा में बहने लगता है। इस सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का यह कथन सत्य है कि— 'वात्सल्य' और शृंगार के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बन्द आँखों से किया, उतना किसी और कवि ने नहीं।

सूर के कृष्ण का जन्म दिव्य है, शास्त्र के इस निरूपण को सूर ने हृदयंगम करा दिया है। नायक कृष्ण ब्रज के समस्त निवासियों की दृष्टि के केन्द्र-बिन्दु बन गए। वे यशोदा के प्रिय ललन, ग्वाल-बालों के सखा, सहचर और सूर के स्वामी

हैं। पर वे यह सब कुछ होते हुए भी कुछ भी नहीं हैं। उन्होंने गोपियों का सहवास किया पर उनका त्याग भी अनोखे ढंग से किया। उनका व्यवहार, उनकी लीलाएं सब विचित्र रूप में हुए। उन्होंने जब बंशी बजाकर मोह लिया, तब निराश्रित छोड़कर चल दिए। रास-रचना, चीरहरण सब कुछ मन में उथल-पुथल मचा देते हैं-एक चेतना उत्पन्न करते हैं। सूर के काव्य में इन सबकी मनोहारिणी छबि झिलमिलाती है।

बाल मनोविज्ञान का जितना सूक्ष्म परीक्षण सूरदास में मिल जाता है अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तविकता तो यह है कि बाल जिज्ञासा के प्रति कवियों का ध्यान ही नहीं गया है। तुलसी तो अपने आराध्य को कभी भी बालकों जैसा व्यवहार ही नहीं करने देते और उन्हें बचपन से ही गम्भीरता की प्रतिमूर्ति बनाए रखने में ही संलग्न रहते हैं। तुलसी बाल-सुलभ लोक-परम्पराओं से सदा कटे रहते हैं, जबकि सूर बाल-मनोविज्ञान के सहज और सजीव चित्रण के साथ-साथ लोक-परम्पराओं की एक-एक बारीकी का भी ध्यान रखते हैं और इन बाल-लीलाओं तथा बाल-मनोविज्ञान के चित्रण में अपनी सिद्धता के कारण ही संवेदनात्मक धरातल पर वे तुलसी से आगे निकल जाते हैं। आज के आलोचक भले ही सामन्ती युग की छाप सूर में देखें लेकिन सूर को देखने का एक दृष्टिकोण यह भी है कि उन्हें उनके काल, परिस्थितियों, सामाजिक मान्यताओं के धरातल पर रखकर भी उनका परीक्षण किया जाता। बहुतों का आरोप है कि सूर ने सामन्ती परिवेश में ही अपने काव्य का सृजन किया है, लेकिन अगर आप सही रूप में देखें तो सामन्तों के प्रति सबसे अधिक विद्रोह सूर के साहित्य में मिलेगा। हाँ, यह सत्य है कि उन्होंने उस युग के परिवेश के अनुसार ही विद्रोह किया था और मुख्य बात तो यह है कि आज जैसा वातावरण उस काल में नहीं था, फिर आधुनिक परिवेश में सामन्ती विद्रोह की बात सूर में कैसे मिल सकती है ?

सूर के बालकृष्ण को हम सामाजिक और पारिवारिक जीवन के बीच पाते हैं। सूर का बाल-लीला वर्णन पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध है। कृष्ण की एक-एक गतिविधि-छोटे-छोटे पैरों से चलने, मुख में माखन लपेटकर भागना या बाल-सुलभ नटखटपन पर नन्द, यशोदा का कभी पुलकित होना, कभी खीझना, कभी पड़ोसियों का उलाहना सहन करना आदि ये सभी जन-समूह के भीतर की क्रियायें हैं। मानवीय भावनाओं के कारण ही सूर के कृष्ण, कंस द्वारा भेजे गए असुरों का संहार एवं कालीनाग को नाथकर गोप-गोपियों को भय मुक्त करते हैं इसी प्रकार इन्द्र के कोप से डूबती बस्ती को बचाने एवं नन्द को वरुण लोक से लाने आदि का कार्य भी इसी भावना का द्योतक है।

आरम्भ से ही सूरदास ने कृष्ण के चरित्र को सामान्य धरातल पर ही प्रस्तुत किया है। कृष्ण के जन्म पर बधाई तथा उनके वय के साथ बढ़ते हुए हाव-भाव, बाल-सुलभ नटखटपन, प्रतिस्पर्धा की भावना आदि सभी गुण मानवीय ही हैं। माँ यशोदा कृष्ण को चलना सिखलाती है —

"सिखवत चलन जसोदा मैया।"

तो बालकों में जो शिकायत की भावना पाई जाती है उसका भी चित्रण सूरसागर में है। कृष्ण को गोपों द्वारा दौड़ा-दौड़ा कर थका देने की व्यथा की शिकायत अपनी माँ यशोदा से करनी ही पड़ती है—

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मों सों मेरे पांइ पिराइ॥

माँ की ममता कितनी विचित्र होती है कि वह बालक को अपने से दूर जाने देने में हिचकती है और बालक जब हठ करके जाना ही चाहता है तो उसे डरा-धमकाकर रोकने का प्रयत्न करती है यशोदा में भी माँ के इस गुण की छवि है—

खेलन दूरि जात कत कान्हा ?
आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौ, तुम नहिं जानत नान्हा॥

इसी प्रकार स्तनपान के हठ को छुड़ाने के लिए यशोदा कृष्ण को बड़े होने का बोध कराती हैं —

'सुनहु स्याम, अब बड़े भये तुम, कहि स्तनपान छुड़ावत।'

आगे बाल-क्रीड़ा में बड़े-छोटे, ऊँच-नीच किसी का भी भेदभाव नहीं रहता। चाहे कोई हारे कोई जीते। हारने वाला चाहे भले ही उच्च वर्ण अथवा परिवार का हो उसे खेल के नियमों का पालन करना ही पड़ता है और खेल में रोब ग़ालिब करने वाले को किस बुरी तरह फटकारते हैं। इसके सजीव चित्रण में सूर अत्यन्त सफल हुए हैं —

खेलन में को काकौ गोसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस हीं कत करत रिसैयाँ।
जाति पाँति हमते बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातें जाते अधिक तुम्हारी गैयाँ॥

जाति–पाँति, ऊँच–नीच, अमीर–गरीब की खाई को नकारने वाले इस अन्धे महात्मा को लोग साम्प्रदायिकता के घेरे में घेरना चाहते हैं यह उनकी अपनी हीं प्रतिस्थापना है। मानवीय संवेदना का प्रत्येक दृष्टिकोण से सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले ऐसे सशक्त द्रष्टा कम ही मिलने हैं।

कृष्ण के बाल–क्रीड़ा के सखा–सखी जब यौवनावस्था में प्रवेश करते हैं तो उनके अन्दर यौवनावस्था की स्वाभाविक चपलता, छेड़-छाड़, हास–परिहास, प्रेमव्यापार सभी अवस्था के अनुरूप ही ढल जाते हैं। चूँकि कृष्ण और गोपियां नित्य–प्रति चलते–फिरते, हँसते-बोलते, गाय चराते देखते-देखते एक दूसरे के प्रति अनुरक्त होते हैं, इसीलिए इनके प्रेम को हम जीवनोत्सव के रूप में पाते हैं।

हृदय के सूक्ष्म पारखी सूर में हमें सम्बन्धभावना का पूर्ण प्रसार मिलता है। कृष्ण के मथुरा म लौटने पर दुखी नन्द, यशोदा एक दूसरे पर दोषारोपण करते है। अनेक दुःखात्मक भावतरंगों में यशोदा खीझकर सारा दोष नन्द के ऊपर थोपती है। माँ जब बेटे को नही पाती तो वह उसमें अपने पुत्र का दोष न मानकर पति को हीं दोषी ठहराती है, क्योंकि वह जितना अधिकार अपने पति पर ठहरा सकती है उतना बेटे पर नहीं। इसीलिए यशोदा अपना सारा आक्रोश नन्द पर व्यक्त करती हैं। वे नन्द को फटकारती है कि जब वह यहां था– 'तब तू मर–बोई करत।' उनकी यह झुंझलाहट वियोग–जन्य है।

आगे जब उद्धव जी कृष्ण के पास वापस जाने लगते हैं तो माँ के मातृत्व का जैसा सजीव बोध सूरदास जी ने कराया है अन्यत्र दृष्टिगत ही नहीं होता है। पुत्र के प्रति माँ की ममता ऐसी होती है कि वह उसे सदा अबोध बालक ही समझती रहती है, और यह समझती रहती है कि जितना सुख मै अपने बच्चे को दे सकती हूं अन्यत्र नहीं ही मिलेगा। इसीलिए यशोदा अपना संदेश देवकी को देती हैं। देवकी को संदेश देने का कारण यह है कि माँ की ममता को जितना नारी समझ सकती है, दूसरा नहीं। मां की वेदना, उसका विश्वास, धैर्य आदि सभी गुण नारी में मिल सकते हैं और नारी की कथा को एक नारी ही समझ सकती है।

वियोग–दशा का धारा प्रवाह चित्रण भी सूर–साहित्य में अनूठे ढग से प्रस्तुत हुआ है और अनेक मानसिक दशाओं का संचार उसमें सन्निहित है। कृष्ण के चले जाने के बाद गोपियों की मानसिक व्यथा का सूक्ष्म चित्रण सूर ने प्रस्तुत कर दिया है। कृष्ण की अनुपस्थिति में उनकी एक-एक गति विधि उन्हें याद आती है और उन्हें स्मरण करके वह तड़पने लगती हैं। विरहोन्माद में अनेक प्रकार की उठती हुई भावनाओं से रंजित होकर एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई

पड़ती है। गोपियाँ कभी तो प्रकृति को ही कोसने लगती हैं, क्योकि थह अपने भिन्न-भिन्न रूप दिखाकर उन्हें तड़पाती हैं और कभी उसे कृष्ण की अपेक्षा परोपकारी और दयालु समझती है। वे कहती हैं कि यह जड़े-प्रकृति अपने आश्रितों के दुःख से द्रवीभूत हौकर समय पर आती हैं पर कृष्ण में तो प्रकृति के भी गुण नहीं हैं।

बरु ये बदराऊ बरसन आये।
अपनी अवधि जानि नंदनन्दन, गरजि गगन घन छाये।

स्त्रियोचित गुणों का सजीव वर्णन भी ने अच्छे ढंग से किया है। प्रेमभिलाषा की पूर्ति मैं बाधक वस्तुओं के प्रति स्त्रियों की झल्लाहट को स्वाभाविक बोली में सूर ने प्रस्तुत किया है। उद्धव की ज्ञान-सम्वन्धी बातों से चिढ़ी हुई गोपियाँ पहले तो यह कहती हैं कि—

,स्याम तुम्हें ह्यां नाहिं पठाये, तुम हौं बीच भुलाने।'

और जब वे खीझ उठती हैं तो उद्धव को सनकी, पागल ससझने लगती हैं और कहती है कि तुम्हारे जंसे सनकी के मुंह कौन लगे, किसके पास इतना समय है कि तुमसे सिर खपावै यथा—

ऐसी को ठाली बैठी है तो सो मूड़ खपावै।

सूर ने स्त्रियों में व्याप्त सौतिया डाह का निरुपण भो बड़े ही सरल एवं सहज ढंग से किया है। पहले तो वह कहती हैं कि कुब्जा से प्रेम की उनकी चर्चा चारों तरफ व्याप्त हो गई है जिसके कारण उनकी जगहंसाई हो रही है और आगे वे अपनी झुंझलाहट व्यक्त करते हुए कहती हैं कि–तुम अपना ज्ञान कुब्जा के घर में गाड़ रखो, और यह ज्ञानोक्ति उसे ही दीजिए वह कूबड़ी ही ज्ञानयोग जैसी उत्तम वस्तु रख सकती है, मेरे सामने तो कृष्ण का रूप ही कर दो—

पा लागौं कहियौ मोहन सों जोग कूबरी दीजै।
सूरदास प्रभु रुप निहारै, हमरे संमुख कीजै॥

यद्यपि सूर का काव्य कृष्ण के निर्विषय भक्तों के ही सम्यक् आनन्द का कारण है. लेकिन काव्य और कला के सुविज्ञ भी अपने–अपने मनोनुकूल उससे आनन्द रस ग्रहण कर सकते हैं।

अन्त में यही कह सकते हैं कि मानवीय संवेदना जितना इस अंधे युग द्रष्टा को दृष्टिगत हुई है, इसके समानान्तर बहुत ही कम, आंख वाले टिक पाते हैं। आंख वालों ने तो बाह्य वेदना का वाहूय रूप में ही घर्णन किया है, लेकिन इस दिव्य दृष्टि वाले 'सूर' ने बाह्य वेदना को अन्तर्मन से प्रकट किया है।

होलिका

(छात्र—सत्यवीर आर्य एम०ए० (हिन्दी) द्वितीय वर्ष)

सभी जानते हैं कि 'होला' शब्द भर्जित चणक में प्रयुक्त होता है। होली पर्व के शुभागमन पर गोधूम और वाजिमन्थ (चना) दोनों को भूनकर नवीन अन्न ग्रहण के समय लेने की परिपाटी बहुत लम्बे समय से चली आ रही है। नब संवत्सर का नवान्न अपनी नवीनता के लिए सर्वोन्नत स्वरुप प्रस्तुत करता हैं। प्राचीन काल से ही आर्यजन इस ही "होलक" शब्द के आधार पर होलिका पर्व मनाते आ रहे हैं।

परन्तु इतिहास वेत्ताओं का तो ऐसा कथन है कि होलिका हिरण्यकशिपु की बहन थी। जब विभिन्न प्रकार के उपायो का प्रयोग करने पर भी प्रह्लाद को हिरण्यकशिपु अहने आधीन नहीं कर पाया तब होलिका ने ही स्वयं हिरण्यकशिपु को विश्वास दिलाया कि वह प्रह्लाद को लेकर अग्नि में बैठ जायगी, स्वयं निरापद निकल आयगी और प्रह्लाद पावक लुष्ट हो जायेगा परन्तु हुआ इससे विपरोत ही। अतः इस दन्तकथा के आधार पर भी 'होलिका" शब्द ऐतिहासिक आवरण ओढ़कर अपने द्वितीय अर्थ को भी अभिव्यक्त करता है।

यदि कुछ और भी चिन्तन किया जाय तो प्रह्ललाद जीवात्मा का नाम हैं और होलिका उन दुष्ट प्रवृत्तियों की अभिधा है, जो इस आत्म तत्त्व को दिवा निश दग्ध करती रहती है। 'हुल' धातु से स्वार्थ में कन् प्रत्यक्ष तथा स्त्रीत्व में टाप् प्रव्यय करके इस शब्द की उत्पत्ति होती है जिसका अर्थ है — होली का त्योहार, लकड़ी, पेड़, घास फूस आदि का ढेर, जिसका दहन फाल्गुनी पूर्णिमा की रात्रि में होता है, एक राक्षसी जो हिरण्यकशिपु की बहन थी। इसी सन्दर्भ में "होलक" एवं "होलाका" शब्द भी चिन्तनीय हैं जिनका अर्थ क्रमशः मटर, चने आदि की आग पर भूनी हुई अधपकी पत्तियां तथा वसन्तोत्सव, होली का त्योहार फाल्गुन की पूर्णिमा है। 'होलिका' का एक अर्थ 'लकड़ी' होने से लकड़ियों का संचय करके जलाने की जो प्रचलित परम्परा आज-कल है उसका प्रादुर्भाव भी सार्थक है और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि जिस

१. (लुष् + क्त) पुस् दाहे, जला हुआ, दग्ध।

परम्परा का अक्षुण्ण प्रचलन आज भी किसानों ने मटर, चने आदि को आग पर भून कर खाने का है, जिसे देसी भाषा में "होला" या "होरहा" भी कहते हैं, भी इसी अर्थ को अपने गर्भ में छिपाये हुए है।

यदि इसी "होलिका" शब्द को दार्शनिक पृष्ठ भूमि में रखकर देखा जाय तो आत्मतत्त्व के अन्तराल में जन्म जन्मान्तर से ओतप्रोत कुसंस्कारों की प्रवृत्तियों का समुच्छाय (वृद्धि) होने पर भी "होलिका" शब्द की व्युत्पत्ति दृष्टिगत होती है।

अतः अध्य त्म तत्त्व में जीवात्मा जब परम एश्वर्यशाली परमेश्वर, जो वास्तव हिरण्य-कश्यप है (क्योंकि उन्हें हिरण्यगर्भ कहा गया है) समस्त ऐश्वर्य के एकमात्र वे ही द्रष्टा हैं, परन्तु वह दैत्य नहीं अपितुः देवों के देव महादेव हैं। उनकी शरण में जाने से प्रह्लाद हिरण्यकशिपु दैत्य से तो त्राण पाता ही है साथ ही "होलिका" नाम की असंख्यात दुष्प्रवृत्तियों को भस्म कर सुरक्षित हो जाता है।

आज की काष्ट संचय करके अग्नि लगाने की प्रथा यज्ञ की अपभ्रंभ रूप है। वस्तुतः अपनी दुष्प्रवृतियों को प्रह्लाद "यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म" के आधार पर उज्ज्वल कर देता है। भारतीय संस्कृति इसी पर्यावरण में पलती चली आ रही है अतः "हीलिका" का महत्व बहुत अधिक स्तुत्य हो जाता है।

हमें इस अवसर हर भारतीय संस्कृति का बड़ी तत्परता के साथ अध्ययन करना चाहिए।

कहानी

नर्स

ले०—ज्ञानचन्द रावल एम०ए०, प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

मनुष्य की प्रकृति से सदा होड़ रही है परन्तु प्रकृति के भयंकर वज्र समान थपेड़े मनुष्य को धराशायी कर देते हैं। मनुष्य भी प्रकृति को जय करने की सोचता है परन्तु सब कुछ करके भी चन्द्रमा पर पहुंच कर सागर और वायु, आकाश और पाताल पर भी अपने को अधिकारी समझ कर भो मानव तुच्छ है। प्रकृति का दास है। उसका शासक नहीं। प्रकृति उसे समय की शिला पर पटक कर मनुष्य के सुन्दर रूप को जर्जर और कुरूप बना देती है।

ऐसा ही सुन्दर सलोना रूप लिए कल्याणी जहां भी पहुँचती आकर्षक का केन्द्र बन जाती। वह लोगों के दिलों की मलिका थी, हृदयेश्वरी थी। उसे क्या याद है? वह कहाँ पैदा हुई? कहा पली? बस उसे इतना स्मरण होता है वह किसी झील के किनारे बने मकान में रहती थी। उसके चारों ओर पर्वत थे। झील की छाती पर सैकड़ों नावें तरती रहती थी और एक दिन उसे अचानक कई लोग उठा लाये थे। वह १९४७ का काल था। भारतीय इतिहास के वे पृष्ठ मनुष्य के खून से रंगे हैं। इतना वीभत्स और हृदय विदारक दृश्य इतिहास ने शायद कभी नहीं देखा है। जहां सरेआम स्त्रियों को पकड़ कर विवस्त्र कर दिया जाता था। उनकी अस्मत से खुलकर खेला जाता था। नग्न स्त्रियों के झुंड बनाकर उन्हें नीलाम किया जाता था। इतिहास में इससे अधिक क्रूर घिनौना व्यवहार शायद किसी जाति ने नही किया। राजलिप्सा एवं सिंहासन-के मोह के कारण यह रक्तपात हुआ जिसके सूत्रधार थे अंग्रेज, जिनका सितारा बुलन्दी पर था। उस समय उनके राज्य-विस्तार में सूर्य कभी अस्त नहीं होना था परन्तु उन्हें आज अपना, शासन संभालना भी कठिन हो रहा है। नियति का क्रूर व्यंग्य आज उन्हें ही देखना पड़ रहा है।

कल्याणी कब काश्मीर से दिल्ली चली आयी? जिसके साथ चली आयी? उसे पता ही न चला। वह तो भीड़ में चली आयी और जिस बाई ने उसे

पाला पोसा था वह स्वयं एक दुर्घटना का शिकार हो गयी थी यौवन के द्वार पर खड़ी कल्याणी अकेली रह गयी थी। उसके यहां आने वाले एक अधेड़ आयु के रामलाल पंजाबी उसे अपने यहां ले आये। किंग्सवे कैम्प में उसकी कोठी थी। कल्याणी स्वयं इस नाबदान से निकलना चाहती थी और उसे साधन मिल गया था रामलाल पंजाबी। जितना भी धन था वह रामलाल के यहां कल्याणी उठा लायी थी। सुन्दर कोठी को और भी सुन्दर रूप दिया गया। एक फ़ीएट गाड़ी भी ले ली गयी।

सब संवर जाने के पश्चात् गृह–प्रवेश का दिन नियत किया गया और उस शहर से बहुत लोग रामलाल और कल्याणी को बधाई देने चले आ रहे थे। गाजियाबाद से जो रामलाल के मेहमान आये थे उन्हें वह स्टेशन छोड़ने गया। मेहमानों को गाड़ी में बैठाते हुए उसे ऐसा धक्का लगा कि वह ट्रेन के नीचे गिर गया और उसकी दोनों टांगे कट गयीं।

कल्याणी शायद ऐसे मुहुर्त में उत्पन्न हुई थी जब कभी उसे अपने जीवन में सम्पन्नता का सुख मिलने का अवसर आया वह भाग्यहीन कभी प्रतिफलित नही हुई। रामलाल आज इस संसार में नहीं है। उसकी कोठी और धन का उपभोग कल्याणी कर रही है।

लोगों की आंखें इससे कुछ चाहती हैं। शायद वे यह जानते हैं कि कल्याणी लोगों के आनन्द के लिए है। उनकी अतृप्त प्यास बुझाने को है। वह फूल हैं, काश्मीर का सौन्दर्य है, सम्पन्न है, नौकर–चाकर हैं। पर कल्याणी प्यासी है, अतृप्त है, जीवन सूना है। बाहर सब कुछ हरा–भरा है पर वृक्ष फल शून्य है। जीवन में गति नही है। बहता पानी स्वच्छ कहा जाता है और इकट्ठा हुआ पानी गंदला कहाता है।

कल्याणी प्रातः तक पड़ी रहती। नौकर चाय बना लाता। उसके लिए जीवन में कुछ भी नहीं है। वह शून्य में ताकती रहती है। अलस भाव से उठती है। नहाती है, शृंगार करती है। ड्राइवर से गाड़ी चलाने को कहती है। अपने जीवन को व्यक्त रखने के लिए प्रत्येक कार्यक्रम में जाने का प्रयास करती है। न वह घर आना चाहती है। कभी-कभी रात में वह घर लौटती है। थकी मांदी निर्विकार सी अपने बिस्तर पर अस्तव्यस्त सी पड़ रहती है। रात को चांद और तारागण ही उसकी खिड़की से झाकतें हैं और उसके अद्वितीय सौन्दर्य का पान करते हैं पर मानव से उसे घृणा हो गयी थी। वह नियति से लड़ना चाहती थी। वह किसी पुरुष के सम्पर्क में भी नहीं आना चाहती फिर उसका मन कहता है ये पहाड़

सा जीवन फूलों की घाटी का सौन्दर्य सब ऐसे ही चला जायगा। सब धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगा। एक वृद्ध के समान जर्जर, झुर्रियों से यह मुख-मण्डल मुरझा जायगा। तो क्या चन्दन के समान महकता-गमकता शरीर सड़क पर पड़ी बूढ़ी स्त्री के समान हो जायगा ? तो जीवन को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है ? जीवन क्षण भंगुर है। समय की शिला पर अक्सर मानव को पटकता है और जीवन के क्षण समाप्त हो जाते हैं। यह श्वास की डोरी समय के शस्त्र से कट जाती है। मन में एक ही समस्या घूमी रहती है। बड़े-बड़े महात्मा जीवन को सुरक्षित न रख सके। अपने शरीर को भूसे की भांति तिल-तिल नहीं जलाना है, बल्कि फूस की तरह जीवन को जला देना है। बड़े-बड़े महात्माओं ने अपने इस सुन्दर शरीर को मनुष्य के सुख, समृद्धि और मानव कल्याण के लिए लगा दिया।—सामने टंगे बुद्ध, महावीर, पुरुषोत्तम राम, और फिर महाभारत के युद्ध में योगेश्वर श्रीकृष्ण को अर्जुन को गीता सन्देश। ऐसे चित्रों को देख कल्याणी आज स्वयं अपनी सुधबुध खो बैठो। वह सोचने लगी आखिर आज तक क्यों मैंने इन तस्वीरों पर इन प्रेरणास्रोतों पर ध्यान नहीं दिया ?

वह अपने विस्तर पर से उठती है। आज उसमें एक अजीब फुर्ती थी जो कल्याणी के जीवन में देखी नहीं गयी। कल्याणी ने आज के कार्यक्रम देखे।

समाचार में लिखा था "जरुरत है ऐसी स्त्रियों की जो युद्ध में घायल सैनिकों की सेवा नर्स के समान कर सकें। एक सप्ताह के प्रशिक्षण के पश्चात् उन्हें अस्पतालों में भेज दिया जायगा।"

गाड़ी उसने सैनिक अस्पताल की ओर मोड़ी। फिर ड्राइवर को गाड़ी घर ले जाने का आदेश दे, वह नर्सों में भर्ती होने वाली लड़कियों की लाइन में खड़ी हो गयी।

प्रो० केसरी नारायण शुक्ल एम ए., डी. लिट.

के

वक्तव्य की समीक्षा

(समीक्षक-डा० भगवान देव पाण्डेय)

एम०ए०, पी-एच०डी०

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग

डॉ० शुक्ल लखनऊ विश्वविद्यालय के निवर्तमान आचार्य एवं अध्यक्ष रहे हैं। अपने कार्यकाल के दौरान ही इन्होने विश्व के कई देशों का भ्रमण भी किया है। विद्वान वक्ता ने अपने ओज एवं तर्कपूर्ण वक्तव्य में आधुनिक काल की प्रवृत्तियों का संक्षेप में वर्णन किया।

उन्होने कहा कि सम्वत् १९ सौ के बाद का युग आधुनिक काल के रूप में जाना जाता है। हिन्दी गद्य की विविध विधाओं में हुई रचना के कारण इस काल को 'गद्य-काल' भी कहा जाता है। इस काल में बौद्धिक दृष्टिकोण और वैज्ञानिक चिन्तन का महत्त्व बढ़ा। सन् १८५७ की क्रान्ति की ऐतिहासिक घटना के बाद विधिवत् अंग्रेजी-साम्राज्य स्थापित हुआ। पाश्चात्य संस्कृति और साहित्य के सम्पर्क मे आकर भारतीय समाज ने अपना दृष्टिकोण बदला और उससे नवीन वैज्ञानिक जानकारिया प्राप्त की। भावुकता के स्थान पर बौद्धिक दृष्टि मिली जिससे हमारी रूढ़िवादिता और संकीर्णता के कारण कुंठित होती जा रही साहित्यिक आत्मा को नई दृष्टि एवं स्फूर्ति मिली। औद्योगिक प्रगति और सांस्कृतिक नव जागरण ने हमारे रहन-सहन और सोच-विचार पर भी प्रभाव डाला।

वक्ता ने बताया कि अंग्रेजी शासन-व्यवस्था अपनी सुधारवादी नीति से जन-जीवन को सुविधा देने के लिए प्रयत्नशील थी। सुख-सुविधा के वैज्ञानिक साधनों से जनता लाभान्वित हुई जिससे कुछ काल तक अंग्रेजी शासन के प्रति

प्रति निष्ठा और देश के प्रति भक्ति की भावना जागरित हुई। पाश्चात्य-साहित्य से हमारा परिचय हुआ और उसका यथेष्ट प्रभाव भी पड़ा। यथार्थवादी दृष्टिकोण ने साहित्यकारों को नई और आधुनिक दृष्टि दी। उसी समय विश्व के इतिहास में महत्वपूर्ण घटनाएं घटी जिसका प्रभाव विश्व की राजनीति, समाज और साहित्य पर भी पड़ा। बंगभंग 'आन्दोलन एवं रूस की क्रान्ति ने जनमानस की चेतना को एक नई दिशा प्रदान की। शिक्षा के प्रसार के लिए अनेक संस्थाएं खोली गईं जिससे शिक्षा के प्रसार के साथ ही अपनी संस्कृति और साहित्य के प्रति रुचि एवं जिज्ञासा भी बढ़ी। इन परिस्थितियों के बीच आधुनिक साहित्य ने अपने युग की चेतना को समग्रता में संजोया और व्यक्त किया है। समीक्षावादी दृष्टिकोण के कारण वैविध्य पूर्ण सामाजिक स्थिति के मध्य निर्मित हिन्दी साहित्य का यह युग बहुविध सोपानो से गुजर कर अपने अन्तर्गत अनेक परिवर्तनो को आत्मसात् करता हुआ विकसित और परिमार्जित होता हुआ आज तक पहुचा है।

आधुनिक के काव्य के विकास के निम्न चरण हैं—

(१) भारतेन्दु युग (सन् १८७० से १६०५ तक)
(२) द्विवेदी युग (सन् १६०५ से १६२० तक)
(३) छायावादी युग (सन् १६२० से १६३६ तक)
(४) प्रगतिवादी युग (सन् १६३६ से १६४३ तक)
(५) प्रयोगवादी युग (सन् १६४३ से १६६० तक)
(६) नई कविता युग (सन् १६६० से अब तक)

उपर्युक्त काल की विशेषताओं पर विद्वान वक्ता ने एक समीक्षात्मक वक्तव्य दिया और इनके सम्बन्ध मे अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया तथा इस काल के कवियों एवं लेखकों पर भी प्रकाश डाला एवं उस काल की कृतियों की समीक्षा की। इस काल की मुख्य प्रवृत्तियो की ओर संकेत करते हुए आपने बतलाया कि आधुनिक काल मे हमे वैज्ञानिक दृष्टिकोण, देशभक्ति से भरी हुई रचनाएं, पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव, मुक्त छन्दों का प्रयोग, काव्य विषय की विविधता, शिल्प में नवीन प्रयोग, व्यंग्यात्मक शैली मे कहने की प्रवृत्ति, मनोवैज्ञानिकता, आन्दोलनों की बहुलता आदि देखने को मिलते हैं, और अन्त में इस काल के सभी लेखको, कवियों के गुण-दोषो का सारांश प्रस्तुत करते हुए वक्ता ने सबके प्रति आभार व्यक्त किया।

यद्यपि सभी बातें विद्वान वक्ता ने बड़े ही तर्क पूर्ण एवं बौद्धिक विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत कीं परन्तु उनकी कुछ बाते खटकने वाली थीं, तथा उनका

यह कथन कि अग्रेजी-शासन-व्यवस्था अपनी सुधारवादी नीति से जन-जीवन को सुविधा देने के लिए प्रयत्नशील थी-किसी भी आधुनिक विचार धारा वाले तथा अंग्रेजों के इतिहास को जानने वाले व्यक्ति को स्वीकार नहीं होगी। यह सर्व विदित है कि अंग्रेज यहां व्यापारी बनकर आए थे, उनका प्रत्येक कार्य व्यापार पर आधारित था। यदि उन लोगों ने कहीं भी सुधार की नीति अपनायी है तो केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए और उन मुट्ठी भर लोगों के लिए जिनसे उनका स्वार्थ सिद्धि होता था। अंग्रेजों ने ही हिन्दू और मुसलमानों के बीच भाषाई झगड़ा कराके सदा के लिए एक दूसरे का शत्रु बना दिया और अपनी भाषा को दोनों के ऊपर थोप दिया जिसे ग्रहण कर दोनों आत्म विस्मृत होकर गर्व का अनुभव करते हैं। दूसरी बात यह, कि ' हममें नई दृष्टि एवं स्फूर्ति, देशभक्त आदि अंग्रेजों की देन है," जंचती नहीं। इतिहास साक्षी है कि ये भावनाएं भारतीय समाज में सदा से विद्यमान थीं। हाँ, यह बात स्वीकार की जा सकती है कि 'बाँटो ओर राज्यकरों' की भावना अवश्य अंग्रेजों से भारत में आयी हैं। इसी प्रकार की कुछ अन्य बातें भी खटकने वाली थीं। खैर, कुछ मतभेद मूलक बातों के अतिरिक्त वक्ता का व्यख्यान बहुत ही शिक्षा प्रदएवं बौधिक विश्लेषण से पूर्ण रहा जिसका रसास्वादन श्रोता अन्त तक मंत्र मुग्ध होकर करते रहे।

डा० भगवान देव पाण्डेय ने डा० शुक्ल के व्याख्या में से उनका एकाध बात असहमति व्यक्त की है। समीक्षा के क्षेत्र में मतभेदों का होना आवश्यक है। अस्तु इस पर रचनात्मक दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए। *सम्पादक*

सम्पादकीय वक्तव्य

इस वर्ष इस विश्वविद्यालय का ८१ वां वार्षिक समारोह दिनांक ८ अप्रैल से दिनांक १३ अप्रैल १६८१ तक सम्पन्न हुआ। इस समारोह के प्रारम्भ में जो यजुर्वेद पारायण यज्ञ हुआ वह अद्वितीय रहा। सभी ने यज्ञ के ब्रह्मा श्री पं० राजगुरु शर्मा के वेदोच्चारण एवं सफल मार्गदर्शन की भूरि भूरि प्रशंसा की। इसकी व्यवस्था दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान श्री सरदारीलाल जी वर्मा ने की थी। श्री वर्मा जी की व्यवस्था की भी बड़ी प्रशंसा हुई। यह उनका ही कार्य था कि वह छांटकर ऐसा विद्वान ले आए जो अपने विषय में अद्वितीय सिद्ध हुआ। ११ अप्रैल को माननीय कुलाधिपति महोदय ने कुलपताका का विमोचन किया और आर्य संग्रहालय का उद्घाटन भी किया। उसी दिन अपरान्ह में श्री स्वामी सत्य प्रकाशानन्द की अध्यक्षता में वेद सम्मेलन हुआ तथा आचार्य प्रियव्रत जी ने उसका उद्घाटन किया। दोनों ही वेद के प्रकाण्ड विद्वान हैं इस कारण यह सम्मेलन सर्वाधिक सफल रहा। इसके पश्चात् उल्लेखनीय सम्मेलन "आर्यभट्ट विज्ञान मेला" कहा जा सकता है। इसका उद्घाटन रुड़की विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति जी जगदीश चन्द्र ने ११ अप्रैल को सायं ५-३० बजे किया। यह ऐसा सुन्दर कार्यक्रम था जैसा कभी गुरुकुल के इतिहास में नहीं सुना गया था। यद्यपि आर्यभट्ट मेला का सभी कार्य-क्रम डा. विजय शंकर जी ने किया तथापि उसका निर्देशन परम सम्माननीय कुलपति श्री बल भद्र कुमार जी हूजा ने किया था। उसकी योजना एवं रूपरेखा सभी में उनको महान् योगदान रहा। श्री जितेन्द्र जी-सहायक मुख्याधिष्ठाता, श्री ब्रजमोहन जी थापर (वित्त-अधिकारी), डा० अचिकन जी (रजिस्ट्रार), श्री जबर सिंह सेंगर (डिप्टी रजिस्ट्रार), प्रिंसिपल सुरेशचन्द्र जी त्यागी (विज्ञान लेज कार्वन) डा० गंगाराम गर्ग (विशेष सचिव), श्री के० पी० सिंह गुप्ता (अवकाश प्राप्त प्रिंसिपल) ने इतना सहयोग दिया कि उसकी जितनी प्रशंसा की जाय वह कम है। ऐसा सफल समारोह इससे पूर्व कभी नहीं देखा गया था। बिजली के रंग बिरंगे बल्व चारो ओर जगमगा रहे थे तथा वातावरण हर्षातिरक पूर्ण था।

दिनांक १२ अप्रैल के समारोहों में वेदारम्भ-संस्कार, शिक्षा-सम्मेलन तथा आर्य-सम्मेलन विशेष महत्त्वपूर्ण थे जिनमें डा० सत्यकेतु–विद्यालंकार, माननीय

श्री टी० एन० चतुर्वेदी जी (शिक्षा-सचिव-भारत सरकार), लाला रामगोपाल शालवाले, पं० सत्यदेव जी भारद्वाज, श्री रामचन्द्र जी जावेद, श्री जितेन्द्र जी, श्री जयदेव वेदालंकार आदि ने भाग लिया।

दिनांक १३ अप्रैल को दीक्षान्त समारोह हुआ जिसकी अध्यक्षता माननीय वीरेन्द्र जी कुलाधिपति ने की तथा दीक्षान्त भाषण न्यायमूर्ति श्री एच० आर० खन्ना ने दिया। दीक्षान्त भाषण सरल एवं स्पष्ट था। इसके पश्चात् आर्य-युवक सम्मेलन हुआ जिसका उद्घाटन डा० भवानी लाल भारतीय ने किया तथा व्यायाम सम्मेलन की अध्यक्षता माननीय श्री योगेन्द्र पाल शास्त्री ने की।

ग्रीष्मावकाश में आर्य वीरदल का विशाल कार्यक्रम चला। उसमें अनेक प्रकार के व्यायामो का अभ्यास कराया गया।

गुरुकुल के विशाल फलक पर रंग-बिरंगे चित्र प्रस्तुत हो रहे है। इसके मार्ग दर्शक सफल कलाकार की भांति श्रद्धेय हुजा जी हैं। उनके निर्देशन में गुरुकुल उन्नति के शिखर पर पहुंचेगा।

संशोधन

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१०	फारतीय	भारतीय
,,	१४	आप आप	आप
,,	२०	मयांदाओं	मर्यादाओं
४	२१	सुगन्ध	सुगन्धि
५	३	वापिस	वापस
६	६	हो	होने
६	१७	कि जहाँ	कि वे जहां
७	६	पुरुस्कार	पुरस्कार
७	१०	हितृ	पितृ
७	१४	पडके	पड़के
८	२६	सज्जनों	सज्जनो
८	२८	जायेगी	जायगो
९	१६	सत्पेरणा	सत्प्रेरणा
९	२४	बहनों	बहनो
१०	६	जहां जहां	जहां
१०	अन्तिम पंक्ति	निभायें	निभाये
१४	१	उसके	उनके
१५	२	स्वतन्त्रा	स्वतन्त्रता
१६	३	रात्री	रात्रि
३२	१	महत्व	महत्त्व
४७	२०	सद	सदा
४७	अन्तिम पंक्ति	भी	श्री
६४	१२	श्रद्देय	श्रद्धेय
६४	१२	हुजा जो	हूजा जी